ऋषभ पुत्र भरत से भारत

आचार्य रत्न श्री कनकनन्दीजी

धर्म दर्शन शोध संस्थान ग्रथांक - 16

पुस्तक	:- ऋषभपुत्र भरत से भारत
लेखक	:- आचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेव
आशीर्वाद	:-गणधराचार्यश्री कुन्थुसागरजी गुरुदेव
सहयोगी	:- मुनि श्री कुमार विद्यानंदीजी, मुनिश्री गुप्तिनंदीजी, मुनिश्री आज्ञासागरजी, आर्यिका क्षमाश्री, आर्यिका श्रद्धाश्री
अध्यक्ष	:-श्री गुणपाल जैन (मुज्जफरनगर)
कार्याध्यक्ष	:-श्री भंवरलाल पटवारी (बिजौलिया)
वरिष्ठोपाध्यक्ष	:-श्री सुशीलचन्द्र जैन-बडौत (मेरठ)
उपाध्यक्ष	:-(सम्पादक-प्रकाशन) 1. श्री प्रभातकुमार जैन (मु.न.) 2.श्री राजमल पाटोदी (कोटा) 3. श्री रघुवीर सिंह (मु.न.)
मानद निर्देशक	:-डॉ. राजमल जैन (उदयपुर)
मंत्री	:-श्री नेमीचन्द्र काला (जयपुर)
संयुक्तमंत्री	:-श्री पंकजकुमार जैन (बडौत)
प्रचार मंत्री	:-श्री अशोककुमार गोधा (उदयपुर)
संरक्षक	:- 1. श्री पवनकुमार गोवडिया (सागवाडा) 2. श्री दिनेश खोडनिया (सागवाडा) 3. श्री कीर्तिभाई शाह (सागवाडा)
संस्करण	: -द्वितीय
मूल्य	:- ज्ञान प्रचारार्थे सहयोग
प्रतियाँ	:-1000

प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान :-

1. धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान निकट दि. जैन धर्मशाला, बडौत (मेरठ)
2. नव अल्पना प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स मोदीखाना, जयपुर -3 (राज.)
3. प्रभात कुमार जैन 4-8 कुंजगली मुज्जफरनगर (यू.पी.)
4. श्रीमती रत्नमाला जैन C/O डॉ. राजमल जैन (वैज्ञानिक)
4-5 आदर्श कॉलोनी, पुना, उदयपुर,फोन नं. (0294) 440793

लेसर टाईप सेटर्स :- श्री कुन्थुसागर ग्राफिक्स सेन्टर
6, उमियादेवी सोसायटी नं. 2, गोपाल नगर के पास,
अमराईवाडी, अहमदाबाद -380026, फोन नं. 2163255

ज्ञान दानी (द्रव्यदाता)

श्री नरेन्द्र कुमार शाह
श्रीमती प्रेरणा शाह

ज्ञानदानी (द्रव्य दाता)

श्री कीर्ति कुमारजी शाह
श्रीमती दिपीका शाह
कुमारी पायल शाह

शुभाशीर्वाद

महान भारतवर्ष के गौरव का वर्णन करते हुये प्राचीन कवियों ने कहा है -

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्त्वात् ॥

- विष्णुपुराण,2/6/24

देवगण भी गान करते हैं कि भारत भूमि में जन्म लेने वाले लोग धन्य हैं । स्वर्ग और अपवर्ग कल्प इस देश में देवता भी देवत्व को छोड़कर मनुष्य योनि में जन्म लेना चाहते हैं ।

अहो अमीषां किमकारिशोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ।
यैर्जन्म लब्धं नृष भारताजिरे मुकुन्द सेवौपायिकं स्पृहा हिनः ।।

-श्रीमद्भागवत, 5/19/21

देवता भारतीय मनुष्यों के सौभाग्य पर ईर्ष्या करते हुए कहते हैं - अहा ! इन लोगों ने न जाने ऐसे कौन से शुभ कर्म किये थे, जिनके फलस्वरूप इन्हें भारत भूमि के प्रांगण में मानव जन्म सुलभ हुआ है । लगता है, भगवान स्वयं इन पर प्रसन्न हो गये थे । भगवान की सेवा के योग्य ऐसा जन्म पाने की इच्छा तो हमारी भी होती है।

इससे सिद्ध होता है कि भारतर्ष इतना महान है, जिससे देव भी इस देश में जन्म लेने के लिये लालायित रहते हैं । यह देश इसलिये महान हुआ कि इस भूमि भाग में महान आध्यात्मिक, राजनैतिक विभूतियों ने जन्म लिया, इन महान विभूतियों में से एक ऐसी विभूति इस पवित्र धरती पर अवतरित हुई थी जिसको यह धरती भी भूल नहीं पाई, जिसके कारण ही इस देश का नाम 'भारत' रूप से विख्यात हुआ। कहा भी है -**आसीत्पुरा मुनिश्रेष्ठः भरतो नाम भूपतिः ।**
आर्षभोयस्य नाम्नेदं भारत खण्डमुच्यते भूपतिः ॥ (नारद पुराण)

भरत चक्रवर्ती के नाम की सार्थकता सन्त तुलसीदास के शब्दो में -

विश्वभरन पोषण कर जोइ । ताकर नाम भारत अस होई ।

मेरे शिष्य एलाचार्य उपाध्याय कनकनंदी ने इस पुस्तक में सिद्ध किया है कि इस देश का नामकरण शकुन्तला के पुत्र भरत से न होकर जैन तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र चक्रवर्ती भरत से हुआ है । कनकनंदी का प्रयास बहुत अच्छा है । वे आधुनिक युगानुकूल पुस्तक लिखने में सतत् संलग्न हैं । पुस्तक बहुत अच्छी है ।

सबके पढ़ने योग्य है। लेखक, सहायक, सम्पादक, द्रव्यदाता व अन्य कार्यकर्त्ताओं को मेरा मंगल शुभाशीर्वाद है । **गणधराचार्य कुन्थुसागर**

आद्य-कथा

जैसे बीज वृक्ष की भूत अवस्था है एवम् वृक्ष भविष्यत्है, उसी प्रकार वर्तमान काल भविष्यत् के लिए बीज भूत है । भविष्यत् की संस्कृति, सभ्यतारूपी धरोहर के बल पर मानव समाज भविष्यत् के लिए प्रयास करता है । भूतकालीन प्रेरणाप्रद घटनायें, गतिविधि, महापुरुष का जीवन-चरित्र मनुष्यों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनता है । महापुरुषों के द्वारा अखिल जीव जगत् के हित के लिए जो रचनात्मक कार्य किया जाता है वही निष्कलंक यथार्थ से इतिहास है इसीलिए इतिहास का महापुरुषों से निर्माण होता है , परन्तु इतिहास महापुरुष का निर्माण नहीं करता है । अन्याय, अनैतिक घटनायें, युद्ध-विग्रह यथार्थ से इतिहास नहीं, परन्तु इतिहास के लिए कलंक है ।

भारतवर्ष अनादिकाल से त्याग, तपस्या, बलिदान तथा आध्यात्मिक गतिविधियों के कारण अन्य-अन्य देशों के लिए पूज्यनीय, गुरुस्वरूप रहा है । भारतीय सभ्यता, संस्कृति धर्म एवं राजनीति को प्रभावित करने वाले एवं गतिविधियाँ देने वाले अनेक महापुरुष हो गये हैं, उनमें से उस महापुरुष रूपी नक्षत्र में चन्द्रमा स्वरूप पुण्य श्लोक भरत चक्रवर्ती हैं । भरत चक्रवर्ती में एक साथ भोग एवं योग, लक्ष्मी सरस्वती का समावेश था, भरत चक्रवर्ती का योगदान भारतीय संस्कृति के प्रत्येक पहलू में हुआ था । वे इस भूखण्ड के प्रथम चक्रवर्ती बनकर भारतीय राजनीति के साथ-साथ विश्व राजनीति के पुरस्कर्ता बने । वे राजनीति, राज्य-कार्य एवं प्रजा-पालन में इतने दक्ष हुये कि उनके नाम के कारण इस विशाल भूखण्ड का नाम अजनाभि देश से परिवर्तित होकर भारत देश पड़ा । कुछ वैदिक ऐतिहासिक विद्वान् अपनी अल्प बुद्धि से सत्य एवं तथ्य को बिना जाने इस देश का नाम हिन्दुस्तान और इण्डिया आदि कहने लगे जिसके कारण भारतवर्ष के लोग भी अपने प्राचीन नाम को भूलकर उसी नाम से पुकारने लगे, परन्तु वस्तुत: प्राचीनकाल से ही यह भारत नाम से विख्यात है । इतना ही नहीं, कुछ वैदिक विद्वानों के साथ-साथ भारत के कुछ विद्वान भी शकुन्तला एवम् दुष्यन्त के पुत्र भरत के नाम से इसका नाम भारत हुआ यह बतलाते हैं, परन्तु यह भी निराधार कोरी कल्पना है । वैदिक एवं जैनवाङ्मय में स्पष्ट रूप से अनेक स्थान में वर्णन किया गया है कि ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम से इस देश का नाम भारत रूप से विख्यात हुआ । मैंने जितना भी वैदिक एवं जैनवाङ्मय का परिशीलन किया उससे यह सिद्ध नहीं होता कि दुष्यन्त के पुत्र भरत के नाम से इस देश का नाम भारत पड़ा ।

यदि किसी भी विद्वान को सप्रमाण प्राचीन साहित्य में इसका उल्लेख पाया गया हो तो मुझे ज्ञात करायें । स्वदेश के प्राचीन साहित्य की अवहेलना करके विदेशियों

ने जो कुछ कहा उसे स्वीकार करना, यह आत्मगौरव के लिए महालाञ्छन-स्वरूप है । स्वदेश को एवं देश की सभ्यता संस्कृति को आगे बढ़ाने के लिए देशवासियों को सर्वप्रथम स्वदेश के ऊपर पूर्ण गौरव होना चाहिए । हमारे प्राचीन देशवासी जब तक हमारे देश पर आत्मगौरव रखते रहे तब तक वह आत्मगौरवमय, सार्वभौम, विकसित, स्वाधीन देश रहा । परन्तु जब से भारतीय लोग प्राचीन आत्मगौरव को खोकर विदेशियों का अंधानुकरण करने लगे, तब से हमारा देश दिनों-दिन अधोपतन के गढ्ढे में गिरता जा रहा है । आत्मगौरव एवं देशगौरव से रहित व्यक्ति बुझी हुई राख के ढेर के समान है । जैसे-बुझी हुई राख को सब व्यक्ति रौंद देते हैं, वैसे ही आत्मगौरव, देशगौरव से रहित व्यक्ति एवं समाज को दूसरे लोग पैर के नीचे रौंद देते हैं । कहा भी है --

जिनको न निजगौख तथा निजदेश का अभिमान है ।
वह नर नहीं, नर पशु निरा और मृतक समान है ॥

Let our object be, our country, our whole country and nothing but our country. **Daniel Webster**

Our country's welfare is our first concern and who promotes that best, best proves his duty. **Havard**

He, who loves not his country, can love no thing. **Byron**

अतएव भारत के पूर्व गौरव को जानना प्रत्येक भारतीय का प्रधान एवम् परम कर्त्तव्य है । उस प्राचीन गौरव से प्रेरणा लेकर उज्ज्वल आदर्शमय भविष्यत् की ओर बढ़ना हम भारतीयों का कर्त्तव्य है ।

भारतवर्ष में अनेक स्वनाम धन्य भरत हो गये, यथा --

1. ऋषभ तीर्थंकर के ज्येष्ठ पुत्र 'भरत'
2. महापुरुष रामचन्द्र के भाई 'भरत'
3. संत जड़ 'भरत'
4. शकुन्तला के पुत्र 'भरत'
5. नाट्य शास्त्र के रचयिता मुनि 'भरत'

उपरोक्त प्रधान 5 भरत में से ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नामकरण हुआ । इका विस्तृत वर्णन के साथ भरत चक्रवर्ती की गौरव गाथाओं का वर्णन इस कृति में किया है, इस कृति का नाम 'ऋषभपुत्र भरत से भारत ' है ।

इस पुस्तक के प्रथम प्रकाशन का भार कु. सोनिया जैन सुपुत्री विनोदकुमार जैन (स्टैट बैंक), रेणु जैन सुपुत्री पवन कुमार जैन ने उठाया । द्वितीय संस्करण का प्रकाशन कु. पायलशाहने पिच्छि परिवर्तन के उपलक्ष्य में किया है । तीनों कुमारियों

ने स्वेच्छापूर्वक इस पुस्तक का प्रकाशन करके भरत एवं भारत सम्बन्धी अनेक मूल धारणाओं को निर्मूलन करने तथा ज्ञान का प्रचार-प्रसार करने में सहायता की है । ये कुमारियाँ इस छोटी सी उम्र में इस प्रकार धन का सदुपयोग करके मानव समाज और विशेषत: महिला समाज के लिये आदर्श प्रस्तुत कर रही हैं। जिस युग में विशेषकर नवयुवक-नवयुवतियाँ अपने तन-मन-धन को भोग, विलास, मनोरंजन, फैशन में बरबाद कर रहे हैं वहाँ पर ये लोग अपना तन,मन, धन एवं समय मेरे लेखनीय कार्य में एवं साहित्य प्रकाशन में सदुपयोग करके दूसरों के लिए आदर्श प्रस्तुत कर रही हैं । यह प्राचीन भारतीय संस्कृति रही है कि महिलाएँ विशेष करके धर्म कार्य में आगे रही हैं, इसका प्रमाण है तीर्थंकर केसमय में जितने श्रावक होते थे उससे प्राय: तीन गुणा श्राविका होती थीं तथा जितने मुनि रहते थे इसके तीन गुणा अधिक आर्यिका होती थीं । कर्नाटक में भी कुछ शताब्दियों के पहले मंदिर एवं मूर्ति स्थापन करने तथा साहित्य प्रचार करने में महिलाओं का पुरुषों से अधिक योगदान रहा है। दु:ख के साथ खुशी की बात यह है कि इय युग में भी कुछ नवयुवक युवतियाँ धर्म के पथ पर आरूढ़ हैं । इन छोटी सी बच्चियों से आदर्श लेकर धर्म कार्य में आगे बढ़ना चाहिए जिससे स्त्री जाति के साथ मानव समाज का कल्याण हो । इस पुस्तक के लेखन कार्य में जिन गुरुभक्त बालक-बालिकाओं ने योगदान दिया, उन्हें मेरा मंगलमय आशीर्वाद है ।

उपर्युक्त द्रव्यदाताओं एवं लेखन कर्त्ताओं को मेरा मंगलमय शुभाशीर्वाद है। उनका तन,मन,धन एवं समय का सदुपयोग इसी प्रकार रचनात्मक धार्मिक कार्य में उत्तरोत्तर हो जिससे उनको परम्परा से मोक्ष की उपलब्धि हो । इस पुस्तक-लेखन में जैन धर्म के अनेक साहित्य का और हिन्दू धर्म के अनेक साहित्य का अवलम्बन लिया गया है । वस्तुत: इस कृति के रचयिता वे ही महापुरुष हैं जिनका मैंने अवलम्बन लिया है । मैंने तो केवल एक सत्य-तथ्य को जनगण के सामने प्रस्तुत करने के लिए उन कृतिकारों के वचनों का इसमें संकलन किया है । संकलन में जो कुछ त्रुटि हो, विज्ञपाठक संशोधन करने के लिए मुझे अवगत करायें । इस संकलन कार्य को मैं तब सफल मानूंगा जब एक भी व्यक्ति सत्य तथ्य को स्वीकार करके भारतीय गौरवपूर्ण गाथाओं को विश्व के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए आगे बढ़ेंगे ।

भारतीय जनगण, भरत के आदर्श पर चलते हुए यह लोक, परलोक, स्वपर कल्याण करें । इस महती शुभकामनाओं के साथ ।

आचार्य कनकनंदीजी
19-11-97

पीच्छि की नैतिक बोली (अन्य उपकरणादि के लिए भी)

1. शराब,माँस,अण्डा,तम्बाकू व तम्बाकू से बनी समस्त चीजों का त्याग ।

2. पानी छानकर पियेंगे ।

3. लिपिस्टिक, नेलपॉलिश, क्रीम, पाउडर आदि हिंसात्मक प्रसाधन सामग्री का त्याग ।

4. बेल्ट, पर्स, चम्पल आदि चर्म निर्मित वस्तुओं का त्याग ।

5. रेशमी, ऊनी वस्त्रों का त्याग ।

6. प्रतिदिन देवदर्शन करेंगे । (विशेष परिस्थिति में छूट-यथा ऋतु -स्नान रोगादि।)

7. मुनि, आर्यिका आदि त्यागियों को आहारदान देंगे तथा उनकी सेवा करेंगे।

8. मुनिसंघ की निन्दा न करेंगे न सुनेंगे । तथा उनकी हर तरह से सहायता करेंगे।

9. मृत्युभोज में न जायेंगे और न ही मृत्युभोज करवायेंगे । बाहर के अतिथियों को छूट ।

10. दहेज न लेंगे और न देंगे । या केवल नहीं देंगे ।

11. आलू,प्याज, लहसुन आदि जमीकन्द का त्याग ।

12. प्रतिदिन यथाशक्ति मौन रखेंगे ।

13. किसी की निन्दा नहीं करेंगे । तथा झूठ नहीं बोलेंगे । जिससे दूसरों को कष्ट हो और हानि उठानी पड़े । (दूसरों को सुधारने के लिए समझाने की छूट)

14. प्रतिवर्ष एक मुनि संघ का तथा तीर्थक्षेत्र का दर्शन करने जायेंगे ।

15. रात्रि भोजन का त्याग, मात्र औषधि पानी की छूट रखेंगे ।

16. कम तौलकर नहीं देंगे, मिलावट, रिश्वतखोरी, झूठी गवाही नहीं देंगे ।

17. अमर्यादित अचार, मुरब्बा, पापड़ नहीं खायेंगे ।

18. लॉटरी, ताश, जुआ, सट्टा आदि नहीं खेलेंगे ।

19. होटल का भोजन नहीं करेंगे ।

20. जीवन में अवश्यमेव आर्यिका या मुनि आदि दीक्षा लेंगे या भावना भायेंगे।

21. जीवन पर्यन्त, विवाह पर्यन्त या कुछ अवधि तक या अष्टमी, चतुर्दशीव व पर्यूषणपर्व में ब्रह्मचर्य व्रत धारण करेंगे ।

22. अपनी आय से 25%,15%, 10%, 5%, कुछ निश्चित प्रतिवर्ष दान में देंगे ।

23. शास्त्र प्रकाशित करेंगे तथा साहित्य के लिए ज्ञान-दान देंगे ।

24. किसी को कष्ट नहीं देंगे तथा न ही चुगली करेंगे ।

25. सप्ताह में कम से कम एक दिन पूजा करेंगे ।

26. प्रतिदिन दो माला णमोकार मंत्र का जाप करेंगे ।

27. गर्भपात (भ्रूण हत्या) नहीं करेंगे न ही करवायेंगे ।

28. विवाह आदि मांगलिक कार्यक्रम में रात्रि भोजन नहीं करेंगे न करवायेंगे या नहीं करेंगे।

29. समाधिपूर्वक मरण को प्राप्त करेंगे । या भावना भायेंगे ।

30. अश्लील, कलहकारी, हिंसात्मक, गंदी फिल्म नहीं देखेंगे तथा ऐसे साहित्य नहीं पढेंगे ।

31. अहंकार नहीं करेंगे ।

32. दूसरों के गुणों से ईर्ष्या, द्वेष नहीं करेंगे । गुणी से गुणग्रहण करेंगे ।

33. मंदिर में चम्पल, प्रसाधन सामग्री तथा चमड़े से नीर्मित वस्तु लेकर नहीं जायेंगे ।

34. बिना कारण कभी भी क्रोध नहीं करेंगे ।

35. मंदिर में झगड़ा, कलह, निन्दा नहीं करेंगे ।

36. धर्म को लेकर, झगड़ा, कलह नहीं करेंगे ।

37. प्रतिदिन धार्मिक ग्रंथों का स्वाध्याय करेंगे ।

38. छल कपट तथा धोखा-धड़ी नहीं करेंगे ।

39. नशीली चीज न सेवन करेंगे न करवायेंगे, न ही विक्रय करेंगे ।

40. स्वयं के धार्मिक एवं नैतिक कर्त्तव्य समयपर ठीक ढ़ंग से करेंगे ।

41. किसी के भी अच्छे कार्य का विरोध नहीं करेंगे , सहायता यथासंभव करेंगे, प्रशंसा करेंगे ।

42. अपना नैतिक कर्त्तव्य निष्ठापूर्वक समय पर करेंगे । अनुशासन-शालीनता का त्याग नहीं करेंगे ।

43. चाय, काफी का त्याग करेंगे ।

44. विभिन्न प्रकार के परिग्रहों का निश्चित प्रमाण करेंगे । यथा धन-मकान आदि।

45. धार्मिक साहित्य वितरण करेंगे ।

विशेषः- 1. नियम लेकर जो महानुभाव गुरुदेव को संघ को नूतन पीच्छि देगा उसे पुरानी पीच्छि दी जायेगी ।

2. नियम लेने वाले महानुभाव समयावधि या जीवन पर्यन्त आत्मसाक्षी पूर्वक, निष्ठापूर्वक पालन करेंगे । नियम लेते समय जिस अवधि तक लिया था तब तक अवश्य पालन करेंगे ।

3. पीच्छि परिवर्तन में भाग लेने वालों में कम उम्र वालों को अधिक प्राथमिकता तथा अधिक सुविधा दी जायेगी ।

4. अधिक से अधिक नियम लेने वालों को ही बोली मिलेगी । जिसे बोली नहीं मिलेगी वे स्वेच्छा से नियम पाल सकते हैं ।

5. सभी बालक-बालिकाएँ, युवक-युवतियाँ सभी वर्ग के प्रौढ़ इसमें भाग ले सकते हैं ।

6. स्थानीय तथा बाहर के लोग भी इसमें भाग ले सकते हैं ।

7. स्वेच्छा से भी अन्यान्य नियम भी ले सकते हैं ।

आज्ञा से आशीर्वाद से

आचार्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव

ग्रंथ प्रकाशन संदर्भ

पिच्छिका परिवर्तन के उपलक्ष में उपर्युक्त नियमों में से कुमारी पायल शाह ने 21 नियम लेकर तथा ज्ञान प्रचारार्थे इस साहित्य का प्रकाशन किया । श्रीमती दीपिका देवी शाह धर्मपत्नी कीर्तिकुमार शाह, प्रेरणा शाह धर्मपत्नी नरेन्द्र कुमार शाह द्वारा ।

C/O- शाह हीरालाल केसरीमल सर्राफ
सागवाडा जि. डूगरपुर (राज.) 314025
फोन नं. S.T.D.02966 (S) 20227 (R) 20827

गुरु सानिध्य मिला

चारों ओर अमंगल फैला, त्राहि -त्राहि हो रही है,
गुरुतत्व को छोड़ मनुष्यता, जार-जार रो रही है ।
धार्मिक शिक्षा दो हम सबको, धर्म-कर्म सिखलाओ,
अनुशासन में बद्ध करो, सद्-आचरण बतलाओ ॥

गुरुवर का आगमन जब मुजफ्फरनगर में हुआ था उसके पूर्व ही हमने उनके बारे में सुना था कि आप बहुत ही ज्ञानी हैं व धर्म और विज्ञान का प्रतिपादन बहुत ही अच्छे ढंग से करते हैं । आप सब हमारे नगर में आये तो हमारे मन में उत्सुकता तो थी ही इसीलिये हम गुरुवर के प्रवचन सुनने आये उनकी चर्या आदि देखी । यह तो आपको ज्ञात ही है कि वर्तमान युग में हर युवक-युवतियाँ शीघ्रातिशीघ्र बिना परीक्षण-निरीक्षण के किसी पर श्रद्धान नहीं करते । जब हमने उपाध्याय श्री से पढ़ा, उनके प्रवचन सुने, उनसे और अधिक लाभ हम इस चातुर्मास में प्राप्त करें इस भावना से उनके पास लिखने का काम करने लगे । जिससे हमें धर्म व अन्य विषयों के अध्ययन का बहुत लाभ हुआ ।

गुरुवर की पुस्तकें लिखते समय उत्साहपूर्वक; बिना याचना किये उनकी पुस्तकें छप रही हैं, यह सब हमने देखा । महाराज श्री स्वयं किसी से नहीं कहते तो भी श्रावक स्वयं उनके ज्ञान से प्रभावित होकर आते और कहते कि- ''महाराज जी! हम आपकी पुस्तक छपवाना चाहते हैं।'' यह सब देखकर हमारे मन में भी जिज्ञासा हुई कि क्यों न हम भी अपने ज्ञानावरणी कर्म का क्षय करने के लिये और ज्ञान का क्षयोपशम बढ़ाने के लिये अपनी शक्ति के अनुसार पुस्तक छपवायें । किसी ने कहा भी है -- **गुरु बनाओ जानकर, पानी पियो छानकर ।**

गुरु बनाना सरल है, परन्तु सद्गुरु का मिलना दुर्लभ है । जब मनुष्य के सौभाग्य का उदय होता है तभी ऐसे गुरुओं का सानिध्य प्राप्त होता है, इन्हीं गुरुवर के कारण हमारे अन्दर धार्मिकता का अंकुर फूटा । जिसका निमित्त ऐसे महान् गुरुवर उपाध्याय श्री हैं । जब उपाध्याय श्री ने हमें धर्म की परिभाषा बतलायी तभी हमारे अन्दर ऐसी भावना आयी कि हम भी धार्मिकता के क्षेत्र में अग्रसर हों और दूसरों के लिये प्रेरणा बनें ।

गुरु भक्ति सती मुक्त्यै, क्षुद्रं किं वा न साधयेत् ।
त्रिलोकी मूल्य रत्नेन, दुर्लभः किं तुषोन्करः ॥

यदि गुरु भक्ति से मोक्ष रूपी अत्यन्त मूल्यवान वस्तु मिल सकती है, तो क्या

अन्य क्षुद्र कार्यों की सिद्धि नहीं हो सकती? इसलिये हिताकांक्षियों को सतत् प्रयत्नशील होकर गुरुओं की सेवा करनी चाहिये क्योंकि हम अपने अनुभव से जानते हैं कि जब तक हम गुरु की शरण में नहीं आये थे तब तक हमें कुछ भी ज्ञान नहीं था । मंदिर क्यों जाते? स्वाध्याय क्यों करते हैं? हमें क्या करना चाहिये आदि अनेक बातों का ज्ञान कराने में हेतु हैं तो गुरु ही हैं इसलिये कहा भी है -

गुरु बिना सर्वे भवन्ति पशुभिः सन्निभाः ।

गुरु के बिना मानव का जीवन पशुओं से भी गया बीता है क्योंकि गुरुवर कहते हैं कि तिर्यंच भी उपदेश ग्रहण करते हैं- गुरु बनाते व व्रती होते हैं । फिर हम तो एक विचारशील संज्ञी पंचेन्द्रिय (मन सहित) मनुष्य हैं तो हमें अवश्य ही अपने जीवन में एक गुरु पथ प्रदर्शक के रूप में स्वीकार करना ही चाहिये और यदि स्वीकार नहीं करेंगे तो हमारी वही दशा होगी ।

गुरू बिना कौन दिखावे बाट, अवगढ़ डोंगर घाट ।

हम एक ऐसे कंकरीले, कीचड़ से भरे अन्धकारमय जंगल में फँस गये और जहाँ निकलने की राह नहीं ऐसे समय गुरु रूपी मार्ग-दर्शक की नितान्त आवश्यकता है ।

हमने गुरुवर के पास बैठकर लिखा और उन्होंने बतलाया कि इस देश का नाम भारत कैसे पड़ा । इस विषय को पढ़कर हमें भरत का इतहिास पढ़ने का मौका भी मिला और गुरुवर ने प्रमाणों के द्वारा ऐतिहासिक, राजनैतिक, साहित्यिक पौराणिक रूप में बहुत ही सुन्दर विवेचन किया है, यह तो आपको पढ़कर ही ज्ञात होगा । वास्तव में हमारे अन्दर धार्मिकता का बीज बोने वाले हमारे गुरुवर उपाध्याय श्री कनकनंदीजी महाराज, मुनि श्री पद्मनंदी जी महाराज, कुमार विद्यानंदीजी महाराज, आर्यिका राजश्री माताजी, आर्यिका क्षमाश्री माताजी ही हैं । हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हमें सदैव ऐसे गुरु व ऐसे शास्त्र छपवाने का अवसर मिलता रहे जिससे हम भी अपने इस अज्ञानमय जीवन को उस ज्ञानभाव की रश्मियों से प्रकाशित कर, हम भी सन्मार्ग की ओर गमन करें। गुरुवर कहते भी हैं - **पाप तमसो रविताम् भजध्वम्।**

Deeds of darkness are committed in the dark.

पाप तमस (अन्धकार) नष्ट करने के लिये सूर्य के समान बनो । बस इसी भावना से ओत-प्रोत होकर हम प्रभु से यह प्रार्थना करते हैं कि सदैव ऐसे ही गुरु के चरण कमलों का सान्निध्य मिलता रहे जिससे हम पंक पापपंक से उभरकर ज्ञान भानु की रश्मियों का पानकर, उस कमल की तरह खिल सकें ।

(गुरुभक्ता कु. रेणु, कु. सोनिया जैन)

आचार्य श्री कनकनन्दीजी द्वारा रचित ग्रन्थ

(1) धर्मविज्ञान बिन्दु (15.00)
(2) धर्मज्ञान एवं विज्ञान (15.00)
(3) भाग्य एवं पुरुषार्थ - चतुर्थ संस्करण (15.00)
(4) Fat and Efforts (15.00)
(5) व्यसन का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण - द्वितीय संस्करण (20.00)
(6) Nakeness of Digamber Jain Saints and Kesh lounch - तृतीय संस्करण (5.00)
(7) पुण्य पाप मीमांसा - द्वितीय संस्करण (15.00)
(8) जिनार्चना पुष्प -1 -द्वितीय संस्करण (51.00)
(9) जिनार्चना पुष्प -2 (21.00)
(10) निमित्त उपादान मीमांसा - द्वितीय संस्करण (9.00)
(11) धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान पुष्प 1 - द्वितीय संस्करण (20.00)
(12) धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान पुष्प 2 (20.00)
(13) धर्म दर्शन एवं विज्ञान (31.00)
(14) क्रान्ति के अग्रदूत -द्वितीय संस्करण (21.00)
(15) लेश्या मनोविज्ञान (6.00)
(16) ऋषभ पुत्र भरत से भारत - द्वितीय संस्करण (25.00)
(17) ध्यान का एक वैज्ञानिक विश्लेषण -द्वितीय संस्करण (21.00)
(18) अनेकान्त दर्शन (20.00)
(19) कर्म का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विवेचन (25.00)
(20) अहिंसामृतम् (7.00)
(21) युग निर्माता ऋषभदेव (15.00)
(22) विश्वशांति के अमोघ उपाय -द्वितीय संस्करण (10.00)
(23) मनन एवं प्रवचन -द्वितीय संस्करण (5.00)
(24) विनय मोक्षद्वार (5.00)
(25) क्षमा वीरस्य भूषणम् -द्वितीय संस्करण (15.00)
(26) संगठन के सूत्र (10.00)
(27) अति मानवीय शक्ति (21.00)

(28) मन्त्र विज्ञान (15.00)
(29) Philoshphy of scientific Religion (21.00)
(30) दिगम्बर साधु का नग्नत्व एवं केशलोंच - एकादश संस्करण (हिन्दी, मराठी, गुजराती) (500)
(31) भगवान् महावीर व उनका दिव्य संदेश (5.00)
(32) धर्म-दर्शन विज्ञान प्रवेशिका पुष्प 1 -पंचम संस्करण (11.00)
(33) संस्कार -हिन्दी (एकादश संस्करण) (5.00)
(34) विश्व-विज्ञान रहस्य (100.00)
(35) संस्कार (गुजराती)
(36) स्वप्न विज्ञान (35.00)
(37) त्रैलोक्य पुण्य ब्रह्मचर्य (12.00)
(38) आत्मोत्थानोपाय: तप: (9.00)
(39) तत्वानुचिंतन (5.00)
(40) विश्व इतिहास (25.00)
(41) शकुन विज्ञान (30.00)
(42) संस्कार चित्र -द्वितीय संस्करण (7.00)
(43) कथा सुमन मालिका (15.00)
(44) 72 कलाएँ (5.00)
(45) हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? (7.00)
(46) कथा सौरभ (21.00)
(47) कथा पारिजात (15.00)
(48) धर्म प्रवर्तक चौबीसों तीर्थंकर (5.00)
(49 जीने की कला (7.00)
(50) संस्कार -वृहत् (30.00)
(51) स्वतन्त्रता के सूत्र (51.00)
(52) कथा पुष्पाजंलि (15.00)
(53) धार्मिक कुरीतियों का परिशोधन (5.00)
(54) सत्य धर्म (5.00)
(55) धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका पुष्प 2 - पंचम संस्करण (11.00)
(56) आचार्य कनकनन्दी की दृष्टि में शिक्षा (11.00)

(57) अयोध्या का पौराणिक ऐतिहासिक एवं राजनैतिक विश्लेषण (11.00)
(58) गुरु अर्चना (3.00)
(59) दंसण मूलो धम्मो तहा संसार मूल हेतु मिच्छतं (15.00)
(60) धर्म-दर्शन विज्ञान प्रवेशिका पुष्प 3 - तृतीय संस्करण (21.00)
(61) संस्कार (अंग्रेजी) (5.00)
(62) श्रमणसंघ संहिता (30.00)
(63) युग निमार्ता ऋषभदेव (अंग्रेजी) (51.00)
(64) पार्श्वनाथ का तपोपसर्ग कैवल्य-धाम बिजौलिया (15.00)
(65) भारतीय आर्य: कौन-कहाँ से-कब से-कहाँ के ? (25.00)
(66) ये कैसे धर्मात्मा - निर्व्यसनी-राष्ट्र सेवी (11.00)
(67) विश्वधर्म सभा-समवशरण (21.00)
(68) ''बंधु-बन्धन के मूल'' (61.00)
(69) विश्व द्रव्य विज्ञान -द्रव्य संग्रह (41.00)
(70) आदर्श आहार-विहार -विचार(35.00)
(71) उपवास का धार्मिक-वैज्ञानिक विश्लेषण (15.00)
(72) पूजा से मोक्ष : पुण्य तथा पाप भी (21.00)
(73) आदर्श नागरिक की प्रायोगिक क्रियाऐं (7.00)
(74) सत्यसाम्यसुखामृतम् -प्रवचनसार (301.00)
(75) अग्नि परीक्षा (11.00)
(76) कथा चिन्तामणि (11.00)
(77) उठो ! जागो ! प्राप्त करो !!! (15.00)
(78) सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (वृहत्) (201.00)
(79) सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (छोटा) (21.00)
(80) संस्कार (मराठी)
(81) भ्रष्टाचार उन्मूलन (7.00)
(82) आहारदान से अभ्युदय (9.00)
(83) बाल बोध जैन धर्म (7.00)
(84) नग्न सत्य का दिग्दर्शन (15.00)
(85) ज्वलन्त शंकाओं का शीतल समाधान (41.00)
(86) आहार दान विधि

(87) वैश्विक समस्या : शाश्वत ही, व्यक्तिगत समस्या नाशवान भी
(88) जैन धर्मावलम्बी : संख्या और उपलब्धि

संस्थान की ओर से साधु-संघों को पुस्तकें नि:शुल्क भेंट दी जाती हैं ।

पूरे सेट क्रय करने पर पुस्तकालय, वाचनालय, शिक्षण संस्थाओं के लिये 15% छूट से शास्त्र दिये जायेंगे तथा सामान्य स्वाध्याय प्रेमियों के लिये 10% छूट है । डाक खर्च अलग से है ।

आजीवन सदस्या 5001/- रू. अग्रिम भेजने की आवश्यकता है । द्रव्यदाता आजीवन सदस्य व कार्यकर्ताओं को संस्थान की ओर से समस्त पुस्तकें नि:शुल्क दी जाती है । आर्थिक दृष्टि से समर्थ सामान्य व्यक्ति से उचित मूल्य इसलिए प्राप्त किया जाता है जिससे साहित्य का अवमूल्यन न हो । योग्य व्यक्ति को ज्ञानदान (सहयोग) हो । साधु आदि को नि:शुल्क साहित्य भेजने में आर्थिक आपूर्ति हो एवं उस सहयोग से अधिक साहित्य प्रकाशन-प्रचार-प्रसार हो । द्रव्यदाता को उस द्रव्य से प्रकाशित प्रतियों की एक दशमांश प्रतियाँ नि:शुल्क प्राप्त होंगी । पुस्तकें छपवानेवाले यदि लागत रूपयों में से कुछ रूपये देने में असमर्थ होंगे तो संस्थान उसकी आर्थिक सहायता के साथ-साथ अन्यान्य सहायता करके उनके नाम पर ही उसकी पुस्तक छपा देगी । इसमें संस्थान का कोई निहित स्वार्थ नहीं है । परन्तु ज्ञान प्रसार का मात्र एक उद्देश्य है । जो ज्ञान प्रेमी, ज्ञान दानी, महानुभाव ज्ञानदान, गुप्तदान, सहायता करना चाहते हैं वे सहर्ष ,स्वेच्छा से करें । क्योंकि संस्थान के लिए चन्दा, याचनादि नहीं की जाती है । अधिक सहायता करने वाले को संस्थान में पद भार भी दिया जाता है ।

निवेदक एवं प्राप्ति संस्थान

(1) धर्म दर्शन विज्ञान शोध-संस्थान,
सुशीलचन्द जैन सर्राफ (एम.एस.सी.)
नया बाजार-बडौत-250611 (यू.पी.)
फोन -1234 - 62845

(2) धर्म-दर्शन विज्ञान शोध संस्थान
नेमीचन्द काला
नव अल्पना प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
मोदी खाना जयपुर -3 (राजस्थान)
फोन -0141-318595

(3) धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान
श्री प्रभात कुमार जैन
प्रवक्ता, रसायन शास्त्र
48, कुंजगली, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)
फोन 0131- 431998

(4) श्रीमती रत्नमाला जैन
डॉ. राजमल जैन (वैज्ञानिक)
4-5 आदर्श कृलोनी, पुला, उदयपुर,
फोन नं. (0294) 440793

विषय- सूची

अध्याय		पृष्ठ
1.	(1) भारत का प्रथम चक्रवर्ती	1
	(2) भरत से भारतवर्ष	
	(3) भरत के गुण	
	(4) भरत के शुभ लक्षण	
	(5) भरत की शक्ति	
	(6) भरत को साम्राज्य प्राप्त	
	(7) भरत की आदिनाथ से तत्त्व जिज्ञासा	
	(8) भरत का श्रावक धर्म स्वीकार	
2.	(1) भरत की दिग्विजय	18
	(2) भरत का अपनी प्रशस्ति लिखना	
	(3) सम्पूर्ण सेना से भी अधिक शक्ति भरत की छोटी ऊँगली की	
	(4) सुदर्शन चक्र का अयोध्या में अप्रवेश	
	(5) भाईयों से त्यक्त देश	
	(6) स्वाधीनता प्रेमी बाहुबली	
	(7) इस युग का आद्य महाधर्म युद्ध	
	(8) इस युग का प्रथम भातृ युद्ध	
3.	(1) भरत जी घर में ही वैरागी	46
	(2) धर्मराज भरत	
4.	चक्रवर्ती के अद्भुत स्वप्न दर्शन	55
5.	भरत चक्रवर्ती की मुनि भक्ति	65
6.	(1) गृहस्थ धर्म रत भरत	77
	(2) भरत की दिनचर्या	
	(3) सर्वविद्या भरित भरत	
7.	(1) भरत द्वारा कैलाश पर्वत पर जिन मन्दिर निर्माण	84
	(2) भरत जी घर में ही वैरागी (कथा)	
8.	(1) भरत का वैभव	95
	(2) इय युग का प्रथम स्वयंवर	
9.	(1) दिग्विजयी बने आत्मजयी	102
	(2) पृथ्वी कांत बने मुक्ति कांत	
	(3) राजाओं की वंशावली	
10.	विभिन्न जैन शास्त्रों में वर्णित भरत	106
11.	हिन्दू धर्म में वर्णित भरत चर्या	108

1 भारत का प्रथम चक्रवर्ती भरत

इस भू-भाग का प्राचीन नाम अजनाभि देश या आर्यावर्त था । जिनके नाम पर इस भूखण्ड का नाम भारतवर्ष हुआ, वह स्वनामधन्य पुण्यश्लोक प्रचण्ड शक्तिशाली नीतिवान भरत था । भरत इस युग के ज्योष्ठ, श्रेष्ठ, धर्म, क्रान्तिकारी धर्मनेता, अहिंसा के अग्रदूत, ऋषभ तीर्थंकर के प्रधान एवं प्रथम पुत्र थे । इस युग के राष्ट्रसंघ, समाज, जीवन-यापन प्रणाली के आद्य सूत्रकार भगवान ऋषभ थे । ऋषभदेव, राष्ट्र संगठन उन्नयन एवं परिचालन करने के लिए मानव जाति के नेता (राजा) बने थे । अत: भारत के प्रथम राजा ऋषभदेव थे, परन्तु उनके उत्तराधिकारी ज्येष्ठ-श्रेष्ठ पुत्र भरत उनसे अपने राज्य को दिग्विजय से विस्तार करके एक छत्राधिपति, सार्वभौम सम्राट, चक्रवर्ती बने थे । उन्होंने उस सार्वभौम राष्ट्र को अत्यन्त दक्षता न्यायनीति धर्मानुसार संचालन, सम्बर्द्धन, परिमार्जन किया था। उनका प्रभाव यहाँ तक पड़ा कि भरत माने अजनाभ, वर्ष माने भरत । जैसे भारत में स्वतंत्रता संग्राम के समय महात्मा गाँधी माने हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान माने महात्मा गांधी माना जाता था । इसी प्रकार भरत एवं देश अभिन्न अंग बन गये । इसीलिये आगे जाकर भरत माने भारत , भारत माने भरत अविधान हुआ । कोई-कोई ऐतिहासिक विद्वान मानते हैं कि शकुन्तला एवं दुष्यन्त के शक्तिशाली पुत्र भरत के नाम पर भारत पड़ा । परन्तु मैंने (कनकनंदी) जहाँ तक जैन, बौद्ध व पौराणिक वाङ्मय का अध्ययन किया उससे स्पष्ट प्रमाणिक होता है कि ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम पर ही इस देश का नाम भारत पड़ा । हिन्द धर्म के वेद-व्यास प्रणीत भगवत् पुराण में ऋषभदेव के पुत्र भरत से ही भारत नाम हुआ, यह स्पष्ट वर्णन है । मैंने जहाँ तक हिन्दू महाभारत, हिन्दू रामायण महाकाव्यों का अवलोकन किया और उससे प्रतिपादित शकुन्तला के पुत्र भरत का चारित्र-अध्ययन किया उसमें कहीं पर भी शकुन्तला के पुत्र भरत के नाम पर भारत पड़ा ऐसा वर्णन नहीं है । भरत ऐसे एक महान चत्रवर्ती हुए जिनका ऐतिहासिक अध्ययन किये बिना भारतीय इतिहास अपूर्ण ही रहेगा । इसीलिए यहाँ पर जैन एवं विभिन्न वाङ्मय में वर्णित तथा हिन्दू वाङ्मय में वर्णित भरत का आदर्शमय जीवन प्रतिपादन किया जा रहा है ।

जैन धर्म में वर्णित चक्रवर्ती भरत-

जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की दो धर्मपत्नी थीं । बड़ी धर्मपत्नी का नाम यशस्वती एवं छोटी का नाम सुनन्दा था । एकदिन गुणवती यशस्वती रात्रि के अन्तिम प्रहर में कुछ वैशिष्ठ शुभ स्वप्न देखती है ।

यशस्वती का स्वप्न दर्शन -

सोते समय उसने स्वप्न में ग्रसी हुई पृथ्वी, सुमेरु पर्वत, चन्द्रमासहित सूर्य, हंस सहित सरोवर तथा चंचल लहरों वाला समुद्र देखा । स्वप्न देखने के बाद मंगल-पाठ पढ़ते हुए बन्दीजनों के शब्द सुनकर वह जाग पड़ी ।

उस समय बन्दीजन इस प्रकार मंगलपाठ पढ़ रहे थे, हे ! दूसरों का कल्याण करने वाली और स्वयं सैकड़ों कल्याणों को प्राप्त होने वाली देवी ! अब तू जाग क्योंकि तू कमलिनी के समान शोभा धारण करने वाली है-इसीलिए यह तेरा जागने का समय है जिस प्रकार यह समय कमलिनी के जागृत, विकसित होने का है उसी प्रकार तुम्हारे जागृत होने का भी है । हे मात ! पृथ्वी, मेरू, समुद्र, सूर्य, चन्द्रमा और सरोवर आदि जो अनेक मंगल कराने वाले शुभ स्वप्न देखे हैं वे तुम्हारे आनन्द के लिए हों ! हे देवी ! यह चन्द्रमा रूपी शैवाल को खोजकर अब खेद खिन्न होने से ही मानो अस्ताचल रूपी वृक्ष का आश्रय ले रहा है अर्थात् अस्त हो रहा है । ये तारारूपी हंसनियाँ आकाशरूपी सरोवर में चिरकाल तक तैरकर अब मानो निवास करने के लिए ही अस्ताचल के शिखरों का आश्रय ले रही हैं- अस्त हो रही हैं । हे देवी ! यह चन्द्रमा कांति रहित हो गया है, ऐसा मालूम होता है कि रात्रि के समय चकवियों ने निद्रा के कारण लालवर्ण हुए नेत्रों से इसे ईर्ष्या के साथ देखा है, इसीलिये मानो उसकी दृष्टि के दोष से ही दूषित होकर यह कान्ति रहित हो गया है । हे देवी ! अब यह रात्रि में भी अपने नक्षत्ररूपी धन को चाँदनी रूपी वस्त्रों में लपेटकर भागी जा रही है, ऐसा मालूम होता है मानो वह आगे गये हुए (बीते हुए) प्रहरों के पीछे ही जाना चाहती हो । इस ओर यह चन्द्रमा अस्त हो रहा है और उस ओर सूर्य का उदय हो रहा है ऐसा जान पड़ता है मानो ये संसार की विचित्रता का उपदेश देने के लिए उद्यत हुए हों । हे देवी ! आकाशरूपी समुद्र में मोतियों के समान शोभायमान रहने वाले ये तारे सूर्यरूपी बड़वानल के द्वारा कान्ति रहित होकर विलीन होते जा रहे हैं । रातभर विरह से व्याकुल हुआ वह चकवा नदी के बालू के टीले पर स्थित होकर रोता-रोता

ही अपनी प्यारी स्त्री चकवी को ढूँढ रहा है । हे सती, इधर यह जवान हंस चोंच में दबाये हुए मृणाल खण्ड से शरीर को खुजलाता हुआ हंसी के साथ शयन करना चाहता है । हे देवी ! इधर यह कमलिनी अपनी विकसित कमल रूपी मुख को धारण कर रही है और इधर वह कुमुदिनी मुरझाकर नम्र-मुख हो रही है अर्थात् मुरझाये हुए कुमुद को नीचा कर रही है । इधर तालाब के किनारों पर ये कुरर पक्षियों की स्त्रियाँ तुम्हारे नूपुर के समान उच्च और मधुर शब्द कर रही हैं । इस समय ये पक्षी कोलाहल करते हुए अपने-अपने घोंसले से उड़ रहे हैं और ऐसा जान पड़ता है मानो प्रातः काल का मंगलपाठ ही पढ़ रहे हों । इधर प्रातः काल का समय पाकर ये दीपक कंचुकियों (राजाओं के अन्तःपुर में रहने वाले वृद्ध या नपुंसक पहरेदारों) के साथ साथ ही मन्दता को प्राप्त हो रहे हैं क्योंकि जिस प्रकार कंचुकी स्त्रियों के संस्कार से रहित होते हैं उसी प्रकार दीपक भी प्रातःकाल होने पर स्त्रियों के द्वारा दी हुई सजावट से रहित होते हैं और कंचुकी जिस प्रकार परिक्षीण अवस्था अर्थात् वृद्ध अवस्था को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार दीपक भी परिक्षीण दशा अर्थात् क्षीण बत्ती वाले हो रहे हैं । हे देवी ! इधर घर में तुम्हारा मंगल करने की इच्छा से यह कुब्जक तथा वामन आदि का परिवार तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है इसीलिए जिस प्रकार मानसरोवर पर रहने वाली राजहंस पक्षी का प्रिय वल्लभा हंसी नदी का किनारा छोड़ देती है उसी प्रकार भगवान् ऋषभदेव के मन में रहने वाली प्रिय बल्लभा तू भी शय्या छोड़ । इस प्रकार जब बन्दीजनों के समूह जोर-जोर से मंगल पाठ पढ़ रहे थे तब वह यशस्वती महादेवी जागने वाले दुन्दुभियों के शब्दों से धीरे-धीरे निद्रा रहित हुई जाग उठी ।

ऋषभदेव से स्वप्न फल जिज्ञासा-

शय्या छोड़कर प्रातःकाल का मंगल स्नान कर प्रीति से रोमांचित शरीर हो अपने देखे हुए स्वप्नों का यथार्थ फल पूछने के लिये संसार के प्राणियों के हृदयवर्ती अन्धकार को दूर करने वाले, अतिशय प्रकाशमान और सबके स्वामी भगवान ऋषभदेव के समीप उस समय पहुँची जिस प्रकार कमलिनी संसार के मध्यवर्ती अन्धकार को नष्ट करने वाले और अतिशय प्रकाशमान सूर्य के सम्मुख पहुँचती है। भगवान के समीप जाकर वह महादेवी अपने योग्य सिंहासन पर सुखपूर्वक बैठ गयी। उस समय महादेवी साक्षात् लक्ष्मी के समान सुशोभित हो रही थी । तदनन्तर वह रात्रि के समय देखे हुए समस्त स्वप्न भगवान् से निवेदन करती है ।

ऋषभदेव का स्वप्न फल वर्णन् -

अवधिज्ञान रूपी दिव्य नेत्र धारण करने वाले भगवान ने भी नीचे लिखे अनुसार उन स्वप्नों का फल कहा है कि --

त्वं देवि पुत्रमाप्तासि गिरीन्द्राच्चक्रवर्त्तिनम् ।
तस्य प्रतापितामर्कः शास्तीन्दुः कान्तिसंपदम् ॥ 123 ॥

हे देवी ! स्वप्नों में जो तूने सुमेरू पर्वत देखा है उससे मालूम होता है कि तेरे चक्रवर्ती पुत्र होगा । सूर्य उसके प्रताप को और चन्द्रमा उसकी कान्तिरूपी सम्पदा को सूचित कर रहा है ।

सरोजाक्षि सरोदृष्टेरशौ पङ्कजवासिनीम् ।
वोढा व्यूढोरसा पुण्य लक्षणाङ्कित विग्रहः ॥ 124 ॥

हे कमलनयने ! सरोवर के देखने से तेरा पुत्र अनेक पवित्र लक्षणों से चिह्नित शरीर होकर अपने विस्तृत वक्षस्थल पर कमल वासिनी-लक्ष्मी को धारण करने वाला होगा ।

महीग्रसनतः कृत्स्नां महीं सागरवाससम् ।
प्रतिपालयिता देवि विश्वराट् तव पुत्रकः ॥ 125 ॥

हे देवी ! पृथ्वी को ग्रसा जाना देखने से मालूम होता है कि तुम्हारा वह पुत्र चक्रवर्ती होकर समुद्र रूपी वस्त्र को धारण करने वाली समस्त पृथ्वी का पालन करेगा।

सागराच्चरभाङ्गोऽसौ तरिता जन्मसागरम् ।
ज्यायान् पुत्रशतस्यायमिक्ष्वाकुकुलनन्दनः ॥ १२६ ॥

समुद्र देखने से प्रकट होता है कि वह चरम शरीरी होकर संसार रूपी समुद्र को पार करने वाला होगा । इसके सिवाय इक्ष्वाकुवंश को आनन्द देने वाला वह पुत्र तेरे सौ पुत्रों में सबसे ज्योष्ठ पुत्र होगा ।

इस प्रकार पति के वचन सुनकर उस समय वह देवी हर्ष के उदय से ऐसी वृद्धि को प्राप्त हुई थी जैसी कि चन्द्रमा का उदय होने पर समुद्र की बेला वृद्धि को प्राप्त होती है ।

भरत का स्वर्गावतरण -

ततः सर्वार्थसिद्धिस्थो योऽसौ व्याघ्रचरः सुरः ।
सुबाहुरहमिन्द्रोऽतश्च्युत्वा तद्गर्भभावसत् ॥ 128 ॥

राजा अतिगृद्ध का जीव जो पहले व्याघ्र था फिर देव हुआ, फिर सुबाहु हुआ,

फिर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था, वहाँ से च्युत होकर यशस्वती महादेवी के गर्भ में आकर निवास करने लगा ।

सा गर्भम्वहद् देवी देवाद् दिव्यानुभावजम् ।
येन नासहतकि च समाक्रामन्तमम्बरे ॥ 129 ॥

वह देवी भगवान ऋषभदेव के दिव्य प्रभाव से उत्पन्न हुए गर्भ को धारण कर रही थी । यही कारण था कि वह अपने ऊपर आकाश में चलते हुये सूर्य को भी सहन नहीं करती थी ।

सापश्यत् स्वमुखच्छायां वीरसूरसिदर्पणे ।
तत्र प्रातीपिकीं स्वां च छायां नासोढ मानिनी ॥ 130 ॥

वीर पुत्र को पैदा करने वाली वह देवी अपने मुख की कान्ति तलवार रूपी दर्पण में देखती थी और अतिशय मान करने वाली वह उस तलवार में पड़ती हुई अपनी प्रतिकूल छाया को भी नहीं सहन कर सकती थीं ।

भरत का जन्म-

नवमासेष्वतीतेषु तदा सा सुषुवे सुतम् ।
प्राचीवार्कं स्फुरत्तेजः परिवेषं महोदयम् ॥ 140 ॥

जिसका मण्डल देदीप्यमान तेज से परिपूर्ण है और जिसका उदय बहुत ही बड़ा है ऐसे को जिस प्रकार पूर्व दिशा उत्पन्न करती है उसी प्रकार नौ महीने व्यतीत होने पर उस यशस्वती महादेवी ने देदीप्यमान तेज से परिपूर्ण और महापुण्यशाली पुत्र को उत्पन्न किया ।

भरत का जन्मदिन-

शुभे दिने शुभे लग्ने योगे दुरुदुशहृये ।
सा प्रासोष्ट सुताग्रण्यं स्फुरत्साम्राज्यलक्षणम् ॥ 141 ॥

भगवान् ऋषभदेव के जन्म समय में जो शुभ दिन, शुभ लग्न, शुभ योग, शुभ चन्द्रमा और शुभ नक्षत्र आदि पड़े थे, वे ही शुभ दिन आदि उस समय भी पड़े थे, अर्थात् उस समय चैत्र कृष्ण नवमी का दिन, मीन लग्न, ब्रह्मयोग, धनराशि का चन्द्रमा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र था । उसी दिन यशस्वती महादेवी ने सम्राट के शुभ लक्षणों से शोभायमान ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न किया था ।

भावी चक्रवर्ती की सूचना --

आश्लिष्य पृथ्वी दोर्भ्यां य दसाबुदपद्यत ।
ततोऽस्य सार्वभौमत्वं जगुर्नैमित्तिकास्तदा ॥ 142 ॥

वह पुत्र अपनी दोनों भुजाओं से पृथ्वी का आलिंगन कर उत्पन्न हुआ था इसीलिये निमित्त ज्ञानियों ने कहा था कि वह समस्त पृथ्वी का अधिपति-अर्थात् चक्रवर्ती होगा ।

पुत्र-जन्मोत्सव--

पितामहौ च तस्याभू प्रमोदं परमीयतुः ।
यथा सबेलो जलाधिरुदये शशिनश् शिशोः ॥

जिस प्रकार चन्द्रमा का उदय होने पर अपनी बेलासहित समुद्र हर्ष को प्राप्त होता है उसी प्रकार पुत्र का जन्म होने पर उसके दादा और दादी अर्थात् महारानी मरूदेवी और महाराज नाभिराज दोनों ही परम हर्ष को प्राप्त हुए ।

उस समय राजमंदिर में करोड़ों दण्डों से ताड़ित हुए आनन्द के बड़े-बड़े नगाड़े गरजते हुये मेघों के समान गम्भीर शब्द कर रहे थे । तुरही, दुन्दभि,झल्लरी, शहनाई, सितार, शंख, काहल और ताल आदि अनेक बाजे उस समय मानो हर्ष से ही शब्द कर रहे थे, बज रहे थे । उस समय सुगंधित विकसित, भ्रमण करते हुये भौरों से सेवित और देवों के हाथ से छोड़ा हुआ फूलों का समूह आकाश में पड़ रहा था, बरस रहा था । कल्पवृक्ष के पुष्पों के भारी पराग से भरा हुआ धूलि को दूर करने वाला और जल के छीटों से शीतल हुआ सुकोमल वायु मन्द-मन्द बह रहा था। उस समय आकाश में जय-जय इस प्रकार की देवों की वाणी बढ़ रही थी और देवियों के 'चिरंजीवी रहो', इस प्रकार के शब्द समस्त दिशाओं में अतिशय रूप से विस्तार को प्राप्त हो रहे थे । जिन्होंने अपने सौंदर्य से अप्सराओं को जीत लिया है और जिन्होंने अपनी नृत्यकला से देवों की नर्तकियों को अनायास ही पराजित कर दिया है, ऐसी नृत्य करने वाली स्त्रियाँ बढ़ते हुए ताल के साथ नृत्य तथा संगीत प्रारम्भ कर रही थी। उस समय चन्दन के जल से सींची गई नगर की गलियाँ ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो अपनी सजावट के द्वारा स्वर्ग की शोभा की हंसी ही कर रही हो । उस समय आकाश में इन्द्रधनुष और बिजली रूपी लता की सुन्दरता को धारण करतेहुए रत्ननिर्मित तोरणों को सुन्दर रचनाएँ घर-घर शोभायमान हो रही थी । जहाँ रत्नों के चूर्ण से अनेक प्रकार के बेल-बूटों की रचना की गई है ऐसी भूमि पर बड़े-बड़े उदर वाले अनेक सुवर्ण कलश रखे हुये थे । उन कलशों के मुख स्वर्ण कमलों से ढ़के हुए थे इसीलिये वे बहुत ही शोभायमान हो रहे थे । जिस प्रकार समुद्र की वृद्धि से उसके किनारे की नदी वृद्धि को प्राप्त हो जाती है, उसी प्रकार राजा के घर उत्सव

होने से वह समस्त अयोध्या नगरी उत्सव से हर्षित हो रही थी । उस समय भगवान ऋषभदेव रूपी हाथी समुद्र के जल के समान भारी दान को धारा (सुवर्ण आदि वस्तुओं के दान की परम्परा पक्ष में-मृदुजल की धारा) बरसा रहे थे इसीलिये वहाँ कोई भी दरिद्र नहीं था । इस प्रकार अन्त:पुर सहित समस्त नगर में परम आनन्द को उत्पन्न करता हुआ वह बालक रूपी चन्द्रमा भगवान ऋषभदेव रूपी उदयचल से उदय हुआ था।

भावी चक्री का भरत नामकरण -

समोद भरतः प्रेमनिर्भरा बन्धुता तदा ।
तमाहृद् भरतं भावि समस्त भरताधिपम् ॥ 158 ॥

उस समय प्रेम से भरे हुये बन्धुओं के समूह ने बड़े भारी हर्ष समस्त भरत क्षेत्र के अधिपति होने वाले उस पुत्र को 'भरत' इस नाम से पुकारा था ।

भरत से भारतर्ष -

तन्नाम्ना भारतं वर्षमिति हासीज्जनास्पदम् ।
हिमाद्रेरासमुद्रा क्षेत्रं चक्रमृतामिदम् ॥ 159 ॥

इतिहास के जानने वालों का कहना है कि जहाँ अनेक आर्य पुरुष रहते हैं ऐसा यह हिमवत् पर्वत से लेकर समुद्र पर्यन्त का चक्रवर्त्तियों का क्षेत्र उसी भरत पुत्र के नाम के कारण भारतवर्ष रूप से प्रसिद्ध हुआ है ।

संस्कार से संस्कारित भरत -

अन्न प्राशन चौलो पनयना दीननुक्रमात् ।
क्रिया विधीन् विधानजः स्त्रष्टैवास्य निसृष्टवान् ॥ 164 ॥

विधि को जानने वाले भगवान् ऋषभदेव अनुक्रम से अपने उस पुत्र के अन्नप्राशन (पहली बार अन्न खिलाना), चौल (मुण्डन), और उपनयन(यज्ञोपवीत) आदि संस्कार स्वयं किये थे ।

भरत के गुण -

सैव वाणी कला सैव सा विद्या सैन च द्युतिः ।
तदैव शीलं विज्ञानं सर्वमस्य तदेव तत् ॥ 167 ॥

इस भरत की वाणी, कला, विद्या, द्युति,शील और विज्ञान आदि सब कुछ वही थे जो कि उनके पिता ऋषभदेव के थे ।

सत्यं शौचं क्षमा त्यागः प्रज्ञौत्साहो दया दमः ।
प्रशमौ विनयश्चेति गुणाः सत्वानुवङ्गिणः॥ 214 ॥

सत्य, शौच, क्षमा, त्याग, प्रज्ञा, उत्साह, दया, दम, प्रशम और विनय ये गुणसंघ उसकी आत्मा के साथ-साथ रहते थे ।

वपुः कान्तिश्च दीप्तिश्च लावण्यं प्रियवाक्यता ।
कलाकुशलता चेति शरीरान्वयिनो गुणाः ॥ 215 ॥

शरीर की कान्ति, दीप्ति, लावण्य, प्रिय वचन बोलना और कलाओं में कुशलतायें उसके शरीर से सम्बन्ध रखने वाले गुण थे ।

अप्राकृतातिर्दिव्य मनुष्यो महसां निधिः ।
लक्ष्म्याः पुञ्जोऽयमित्युच्चैर्बभूवाद्भु तचेष्टितः ॥ 217 ॥

वह भरत एक दिव्य मनुष्य था उसकी आकृति भी असाधारण थी, वह तेज का खजाना था और उसकी सब चेष्टाएँ आश्चर्य करने वाली थी, इसलिये वह लक्ष्मी के अतिशय ऊँचे पुंज के समान शोभायमान होता था ।

श्रीमान हेमशिलाद्यनैरपद्यनैः प्राशुः प्रकृत्या गुरुः ।
पादाक्रान्तधरातलो गुरुभरं वोढुं क्षमायां क्षमः ॥
हारं निर्झरचारुकान्तिमुरसा बिभ्रत्तटस्पर्द्धिना ।
चक्रोकोदयभूधरः स रुरुचे मौलीभ्रकूटोद्धरः ॥ 223 ॥

वह भरत चक्ररूपी सूर्य को उदय करने वाले उदयाचल के समान सुशोभित होता क्योंकि जिस प्रकार उदयाचल पर्वत सुवर्णशिलाओं से सान्द्र अवयवों से शोभायमान होता है उसी प्रकार वह भरत भी सुवर्ण के समान सुन्दर मजबूत शरीर से शोभायमान था जिस प्रकार उदयाचल ऊँचा होता है उसी प्रकार वह भरत भी ऊँचा (उदार) था उदयाचल जिस प्रकार स्वभाव से ही गुरु-भारी होता है, उसी प्रकार वह भरत भी स्वभाव से ही गुरु श्रेष्ठ था । उदयाचल पर्वत ने जिस प्रकार अपने समीपवर्ती छोटे-छोटे पर्वतों से पृथ्वी तल पर आक्रमण किया था, उदयाचल जिस प्रकार पृथ्वी के विशाल भार को धारण करने के लिये समर्थ है उसी प्रकार भरत भी पृथ्वी का विशाल भार धारण करने के लिए समर्थ है, इसी प्रकार उदयाचल अपने तटभाग पर निर्झरणों की सुन्दर कान्ति धारण करता है, उसी प्रकार भरत भी तट के साथ स्पर्धा करने वाले अपने वक्षःस्थल पर हारों की सुन्दर कान्ति धारण करता था और उदयाचल पर्वत देदीप्यमान शिखरों से सुशोभित रहता है, उसी प्रकार भरतभी अपने प्रकाशमान मुकुट में सुशोभित रहता था ।

भरत के शुभलक्षण -

बाहुदण्डेऽस्य भूलोकमानदण्ड इवायते ।
कुलशैलास्थाया नूनः तेने लक्ष्मीः परा धृतिम् ॥ 196 ॥

उसके बाहुदण्ड पृथ्वी को नापने के दण्ड के समान बहुत ही लम्बे थे और उन्हें कुलाचल समझकर उन पर रहने वाली लक्ष्मी परम धैर्य को विस्तृत करती थी।

शङ्ख चक्रगदाकूर्मझषादिशुभलक्षणैः ।
रेजे हस्ततलं तस्य नभस्थलमिवोडुभिः ॥ 1971 ॥

जिस प्रकार अनेक नक्षत्रों से आकाश शोभायमान होता है उसी प्रकार शंख, चक्र, गदा, कूर्म और मीन आदि शुभ लक्षणों से उसका हस्त-तल शोभायमान था ।

चक्रच्छत्रासिदण्डादिररत्नान्यस्य पदाब्जयोः ।
लग्नानि लक्षणव्याजात् पूर्वसेवामिव व्यधुः ॥ 208 ॥

उसके चरण कमलों में चक्र, छत्र, तलवार, दण्ड आदि चौदह रत्नों के चिह्न बने हुये थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानो ये चौदह रत्नों, लक्षणों के छल से भावी चक्रवर्ती की पहले से ही सेवा कर रहे हों ।

भरत के आभूषणादि -

अंसावलम्बिना ब्रह्मसूत्रेणा सौ दधे श्रियम् ।
हिमाद्रीरिव गाङ्गेन स्त्रोतसोत्संगसंगिना ॥ 198 ॥

कंधे पर लटकते हुए यज्ञोपवीत से वह भरत ऐसा सुशोभित हो रहा था, जैसा कि ऊपर बहती हुई गंगा नदी के प्रवाह से हिमालय सुशोभित रहता है ।

हसन्निवाधरं कायमूर्ध्वकायोऽस्य दिधुते ।
कटकाङ्गदकेयूरहाराधैः स्वैर्विभूषणैः ॥ 199 ॥

उसके शरीर का ऊपरी भाग कड़े अङ्गद, बाजूबन्द और हार आदि अपने-अपने आभूषणों से ऐसा देदीप्यमान हो रहा था मानो अपने अधोभाग की ओर हँस ही रहा हो ।

स शाररसनोल्लासिदुकूलं जघनं दधौ ।
सेन्द्रचापशान्मेघानितम्बमिव मन्दरः ॥ 203 ॥

वह भरत श्रेष्ठ करधनी से सुशोभित सफेद धोती से युक्त जघन भाग को धारण कर रहा था जिससे ऐसा मालूम होता था मानो इन्द्रधनुष से सहित शरद ऋतु के बादलों से युक्त नितम्ब भाग (मध्यभाग) को धारण करने वाला मेरू पर्वत ही हो ।

भरत की शक्ति -

समाक्रान्तधराचक्र : क्रमयोरवे विक्रम् ।
सर्वाङ्गीणस्तु केनास्य सोदपूर्व: स मानिन: ॥ 209 ॥

केवल उसके चरणों का पराक्रम समस्त पृथ्वी मण्डल पर आक्रमण करने वाला था फिर भला उस अभिमानी भरत के सम्पूर्ण शरीर का पराक्रम कौन सहन कर सकता था ।

चरमाङ्गतयौवास्य वर्णितं बलमाङ्गिकम् ।
सात्विकं तु बलं बाह्यैर्लिङ्गैर्दिग्विजयादिभि: ॥ 210 ॥

उसके शरीर सम्बन्धी बल का वर्णन केवल इतने से ही हो जाता है कि वह चरम शरीरी था अर्थात् उसी शरीर से मोक्ष जाने वाला था और उसके आत्मा सम्बन्धी बल का वर्णन दिग्विजय आदि बाह्य चिह्नों से हो जाता है ।

यद्बलं चक्रश्वत्क्षेत्रवर्तिना नृसुधाशिनाम् ।
ततोऽधिक गुणं तस्य वभूव भुजयोर्बलम् ॥ 211 ॥

चक्रवर्ती के क्षेत्र में रहने वाले समस्त मनुष्यों और देवों में जितना बल होता है उससे कई गुणा अधिक बल चक्रवर्ती की भुजाओं में था ।

भरत का विद्याध्ययन -

पुत्राणां च यथाम्नायं विनया दानपूर्वकम् ।
शास्त्राणी व्याजहारैवमानुपूत्यां जगद्गुरु: ॥ 118 ॥ (पृ. 357)

जगद् गुरु भगवान ऋषभदेव ने इसी प्रकार अपने भरत आदि पुत्रों को भी विनयी बनाकर क्रम से आम्नाय के अनुसार अनेक शास्त्र पढ़ाये ।

भरताद्यार्थ शास्त्रं च भरत च ससंग्रहम् ।
अध्यायैरति विस्तीर्णोस्फुटीकृत्य जगौ गुरु: ॥ 119 ॥

भगवान् ने भरत पुत्र के लिये अत्यन्त विस्तृत बड़े-बड़े अध्यायों से स्पष्ट कर अर्थशास्त्र और संग्रह (प्रकरण) सहित नृत्यशास्त्र पढ़ाया था ।

भरत को साम्राज्य प्राप्त -

जब ऋषभदेव ने वैराग्य सम्पन्न होकर गृहत्याग करने का निश्चय किया तब उन्होंने ज्योष्ठ, श्रेष्ठ पुत्र भरत को अपना राज्य भार समर्पण किया।

ततोऽभिषिच्य साम्राज्ये भरतं सूनुमग्रिमम् ।
भगवान् भारतं वर्ष तत्सनाथं व्यधादिदम् ॥ 76 ॥ (पृ. 379)

भगवान् ऋषभदेव ने साम्राज्य पद पर अपने बड़े पुत्र भरत का अभिषेक कर इस भारतवर्ष को उनसे सनाथ किया ।

यौवराज्ये च तं बाहुबलिनं समतिष्ठिपत् ।
तद्य राजन्वतीव्यासीत् पृथ्वी ताभ्यामधिष्ठिता ॥ 77 ॥

युवराज पद पर बाहुबली को स्थापित किया । इस प्रकार उस समय यह पृथ्वी उक्त दोनों भाइयों से अधिष्ठित होने के कारण राजन्वती अर्थात् सुयोग्य राजा से सहित हुई थी ।

एक साथ तीन समाचार --

श्रीमान् भरतराजर्षिर्बुबुधे युगपत्त्रयम् ।
गुरो: कैवल्य संभूति सूति च सूतचक्रयो: ॥ 2 ॥ (पृ. 573)

राजलक्ष्मी से युक्त राजार्षि भरत को एक ही साथ नीचे लिखे हुए तीन समाचार मालूम हुए कि पूज्य पिता को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है अन्त:पुर में पुत्र का जन्म हुआ है और आयुधशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ है ।

धर्मस्याद् गुरुकैवल्यं चक्रमायुधपालत: ।
कांचुकीयात् सुतोत्पत्तिं विदामास तदा विभु: ॥ 3 ॥

उस समय भरत महाराज ने धर्माधिकारी पुरुष से पिता के केवल ज्ञान होने का समाचार, आयुधशाला की रक्षा करने वाले पुरुष से चक्ररत्न प्रकट होने का वृत्तान्त और कंचुकी से पुत्र उत्पन्न होने का समाचार मालूम किया था ।

धर्म पुरुषार्थी भरत --

पर्याकुलं इवासीच्च क्षणं तद्यौग पद्यत: ।
किमत्र प्रागनुष्ठेयं संविद्या नमिति प्रभु: ॥ 4 ॥

ये तीनों ही कार्य एक साथ हुए हैं । इनमें से पहले किसका उत्सव करना चाहिए यह सोचते हुए राजा भरत क्षण भर के लिये व्याकुल से हो गये ।

त्रिवर्गफल संभूतिरकमोपनता मम् ।
पुण्यतीर्थ सुतोत्पत्तिश्चक्ररत्नामिति त्रयी ॥ 5 ॥

पुण्यतीर्थ अर्थात् भगवान को केवलज्ञान उत्पन्न होना, पुत्र की उत्पत्ति होना और चक्ररत्न का प्रकट होना या तीनों ही धर्म, अर्थ, काम तीन वर्ग के फल मुझे एक साथ प्राप्त हुए हैं ।

तत्र धर्मफलं तीर्थ पुत्रः स्यात् कामाजं फलम् ।
अथानुबन्धिनोऽर्थस्य फलं चक्रं प्रभास्वरम् ॥6॥

इनमें से भगवान के केवलज्ञान उत्पन्न होना धर्म का फल है, पुत्र का उत्पन्न होना काम का फल है और देदीप्यमान चक्र का प्रकट होना अर्थ प्राप्त कराने वाले अर्थ पुरुषार्थों का फल है ।

अथवा सर्वमप्येतत्फलं धर्मस्य पुष्फलम् ।
यतो धर्मतरोरर्थः फलं कामस्तु तद्रसः ॥7॥

अथवा यह सभी धर्म पुरुषार्थी का पूर्ण फल है क्योंकि अर्थ धर्मरूपी वृक्ष का फल है, काम उसका रस है ।

कार्येषु प्राग्विधेयं तद्धर्म्यं श्रेयोऽनुबन्धि यत् ।
महाफलं च तद्देवसेवा प्राथमकल्पिकी ॥8॥

सब कार्यों में सबसे पहले धर्म कार्य ही करना चाहिये क्योंकि वह कल्याण को प्राप्त कराने वाला है और बड़े-बड़े फल देने वाला है इसलिये सर्वप्रथम जिनेन्द्र भगवान की पूजा ही करनी चाहिये ।

निश्चिचायेति राजेन्द्रो गुरुपूजनमादितः ।
अहो धर्मात्मनां चेष्टा प्रायः श्रेयोऽनुबन्धिनी ॥9॥

इस प्रकार राजाओं के इन्द्र भरत महाराज ने सबसे पहले भगवान की पूजा करने का निश्चय किया सो ठीक ही है क्योंकि धर्मात्मा पुरुषों की चेष्टायें प्रायः पुण्य उत्पन्न करने वाली ही होती हैं ।

महाराज भरत अपने छोटे भाई के अन्तःपुर की स्त्रियाँ और नगर के मुख्य-मुख्य लोगों के साथ पूजा की बड़ी भारी सामग्री लेकर जाने के लिये तैयार हुए । गुरुदेव भगवान् ऋषभदेव में उत्कृष्ट भक्ति को बढ़ाते हुए और धर्म की प्रभावना करते हुए महाराज भरत भगवान की वन्दना के लिये उठे ।

पुरजन-परिजन सहित समवशरण में जाकर आठ प्रातिहार्य रूप ऐश्वर्य से युक्त और जगत के गुरु,स्वामी वृषभदेव को देखकर पूजा कराने वालों में श्रेष्ठ भरत ने उनकी प्रदक्षिणा दी और फिर उत्कृष्ट सामग्री से उनकी पूजा की । पूजा के बाद महाराज भरत ने अपने दोनों घुटने जमीन पर रखकर सब भाषाओं के स्वामी भगवान ऋषभदेव को नमस्कार किया और फिर वचनरूपी पुष्पों की मालाओं से उनकी इस प्रकार पूजा की अर्थात् नीचे लिखे अनुसार स्तुति की -" हे भगवान ! आप ब्रह्मा हैं, परम ज्योति

स्वरूप हैं, समर्थ हैं, जन्म रहित हैं, पाप रहित हैं, मुख्य देव तथा प्रथम तीर्थंकर हैं, देवों के भी देव और महेश्वर हैं । आप ही सृष्टा हैं, विधाता हैं, ईश्वर हैं, सब से उत्कृष्ट हैं, पवित्र करने वाले हैं, आदिपुरुष है, जगत के ईश हैं, जगत में शोभायमान हैं और विस्वतोमुख अर्थात् सर्वदर्शी हैं । आप समस्त संसार में व्याप्त हैं, जगत के भर्ता हैं, समस्त पदार्थों को देखने वाले हैं, सबकी रक्षा करने वाले हैं, विभु हैं, सब ओर फैली हुई आत्मज्योति को धारण करने वाले हैं । सबकी योनिस्वरूप हैं - सबके ज्ञान आदि को उत्पन्न करने वाले हैं और स्वयं अयोनि रूप है- पुनर्जन्म से रहित है । आप ही हिरण्यगर्भ अर्थात् ब्रह्मा हैं, भगवान्हैं, ऋषभ हैं, वृषभ चिह्न से युक्त हैं, परमेष्ठी हैं, परमतत्व हैं, परमात्मा है और आत्मभू अपने आप उत्पन्न होने वाले हैं ।"

भरत की आदिनाथ से तत्त्व जिज्ञासा -

भगवान् से प्रबोध प्राप्त करने की इच्छा रखने वाला वह सभा रूपी सरोवर जब हाथरूपी कुडमल जोड़कर शान्त हो गया, जब सब लोग तत्त्वों का स्वरूप जानने की इच्छा से हाथ जोड़कर चुपचाप बैठ गये तब भगवान ऋषभदेव तत्त्वों का स्वरूप जानने की इच्छा करने वाले महाराज भरत ने विनय से मस्तक झुकाकर प्रीतिपूर्वक ऐसी प्रार्थना की ।

भगवन् बोद्धमिच्छामि कीदृशस्तत्त्वविस्तरः ।
मार्गो मार्गफलं चापि कीदृक् तत्त्वाविदां वर ॥79॥

हे भगवान् ! तत्वों का विस्तार कैसा है ? मार्ग कैसा है ? और उसका फल भी कैसा है ? हे तत्त्वों के जानने वालों में श्रेष्ठ ! मैं आपसे यह सब सुनना चाहता हूँ ।

तत्प्रश्ना वसितावित्थं भगवानादितीर्थकृत् ।
तत्वं प्रपंचयामास गम्भीरतरया गिरा ॥80॥

इस प्रकार भरत का प्रश्न समाप्त होने पर प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने अतिशय गम्भीर वाणी के द्वारा तत्त्वों का विस्तर के साथ विवेचन किया ।

नास्त्यात्मेत्याहुरेकेऽये सोऽस्त्यनित्यइतिस्थिताः ।
न कर्त्तेत्यपरे केचिद् अभोक्तेति च दुर्दृशः ॥112॥
अस्त्यात्मा किं तु मोक्षोऽस्य नास्तीत्येकेविमन्वते ।
मोक्षोऽस्ति तदुपायस्तु नास्तीतीच्छन्ति केचन ॥113॥
इत्यादि दुर्णयानेतानपास्य सुनया न्वयात् ।
यथोक्त लक्षणं जीवं त्वमा युष्मन् विनिश्चिनु ॥114॥

कितने ही मिथ्यादृष्टि कहते हैं कि आत्मा नाम का पदार्थ ही नहीं है, कोई कहते हैं वह अनित्य है, कोई कहते हैं कि वह कर्त्ता नहीं है, कोई कहते हैं कि वह भोक्ता नहीं है, कोई कहते हैं कि आत्मा नाम का पदार्थ है तो सही परन्तु उसका मोक्ष नहीं है, और कोई कहते हैं कि मोक्ष भी होता है परन्तु मोक्ष प्राप्ति का कुछ उपाय नहीं है, इसीलिये हे आयुष्मान भरत! ऊपर कहे हुये इन अनेक मिथ्या नयों को छोड़कर समीचीन नयों के अनुसार जिनका लक्षण कहा गया है ऐसे जीवतत्व का तू निश्चय कर ।

संसारश्चैव मोक्षश्च तस्यावस्थाद्वयं मतम् ।
संसारश्चतु रङ्गेस्मिन भवावर्ते विवर्तनम् ॥ 115 ॥

उस जीव की दो अवस्थायें मानी गयी हैं एक संसार व दूसरी मोक्ष । नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चार भेदों से युक्त संसार रूपी भँवर में परिभ्रमण करना संसार कहलाता है ।

निः शेषकर्मनिर्मोक्षो मोक्षोऽनन्तसुखात्मकः ।
सम्यक् विशेषण ज्ञान दृष्टि चारित्रसाधनः ॥ 116 ॥

समस्त कर्मों का बिल्कुल ही क्षय हो जाना मोक्ष कहलाता है, वह मोक्ष अनन्त सुख स्वरूप है तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र साधन से प्राप्त होता है ।

आप्तागम पदार्थानां श्रद्धानं परया मुदा ।
सम्यग्दर्शनमाम्नातंप्रथमं मुक्ति साधनम् ॥ 117 ॥

सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और समीचीन पदार्थों का बड़ी प्रसन्नतापूर्वक श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन माना गया है । यह सम्यग्दर्शन मोक्ष प्राप्ति का पहला साधन है ।

ज्ञानं जीवादिभावनां याथात्म्यस्य प्रकाशकम् ।
अज्ञानध्वान्त संतान प्रक्षयानन्तरोद्भवम् ॥ 118 ॥

जीव-अजीव आदि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करने वाला तथा अज्ञान रूपी अन्धकार की परम्परा के नष्ट हो जाने के बाद उत्पन्न होने वाला जो ज्ञान है वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है ।

माध्यस्थलक्षणं प्राहुश्चरित्रं वितृषो मुनेः ।
मोक्षकामस्य निर्मुक्त चेलस्याहिंसकस्य तत् ॥ 119 ॥

इष्ट-अनिष्ट पदार्थों में समताभाव धारण करने को सम्यग्चारित्र कहते हैं, वह सम्यग्चारित्र यथार्थ रूप से तृष्णारहित, मोक्ष की इच्छा करने वाले, वस्त्ररहित और

हिंसा का सर्वथा त्याग करनेवाले मुनिराज को ही होता है ।

त्रयं समुदितं मुक्तेः साधनं दर्शनादिकम् ।
नैकाङ्गविकलत्वेऽपि तत्स्वकार्यकृदिष्यते ॥ 120 ॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ये तीनों मिलकर ही मोक्ष के कारण कहे गये हैं यदि इनमें से एक भी अंग की कमी हुई तो वह अपना कार्य सिद्ध करने में समर्थ नहीं हो सकते ।

सत्यमेव दर्शने ज्ञानं चारित्रं च फलप्रदम् ।
ज्ञानं च दृष्टिसच्चर्यासानिध्ये मुक्ति कारणम् ॥ 121 ॥

सम्यग्दर्शन के होते हुए भी ज्ञान और चारित्र फल के देने वाले होते हैं इसी प्रकार सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र के रहते हुए ही सम्यक्ज्ञान मोक्ष का कारण होता है।

चारित्रं दर्शनज्ञानविकलं नार्थकृन्मतम् ।
प्रपातायैवतद्धि स्यादन्धस्येव विर्विगतम् ॥ 122 ॥

सम्यक्दर्शन और सम्यक् ज्ञान से रहित चारित्र कुछ भी कार्यकारी नहीं होता किन्तु जिस प्रकार अन्धेपुरुष का दौड़ना उसके पतन का कारण होता है, उसी प्रकार उसके पतन अर्थात् नरकादि गतियों में परिभ्रमण का कारण होता है ।

पुरुषं पुरुषार्थं च मार्ग मार्गफलं तथा ।
बन्धं मोक्षं तथोर्हेतुं बद्धं मुक्तं च सोऽभ्यधात् ॥ 156 ॥

उन्होंने आत्मा और धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ मुनि तथा श्रावकों का मार्ग, स्वर्ग और मोक्ष मार्ग का फल, बन्ध और बन्ध के कारण, मोक्ष तथा मोक्ष के कारण कर्मरूपी बन्धन से बँधे हुए संसारी जीव और कर्म बन्धन से रहित मुक्त जीव आदि विषयों का निरूपण किया ।

भरत का श्रावक धर्म स्वीकार -

श्रुत्वेति तत्त्वसद्भाण गुरोः परमपुरुषात् ।
प्रह्लादं परमं प्राप भरतो भक्ति निर्भरः ॥ 162 ॥

इस प्रकार जगद्गुरु परम पुरुष भगवान् ऋषभदेव से तत्वों का स्वरूप सुनकर भक्ति से भरे हुये महाराज भरत परम आनन्द को प्राप्त हुए ।

ततः सम्यक्त्व शुद्धिं च व्रतं शुद्धि च पुष्कलाम् ।
निष्कलाद्भरतो भेजे परमानन्द मुद्वहन ॥ 163 ॥

परम आनन्द को धारण करते हुये भरत ने निष्फल अर्थात् शरीरानुराग से रहित भगवान ऋषभदेव से सम्यग्दर्शन की शुद्धि और अणुव्रतों की परम विशुद्धि को प्राप्त किया ।

प्रबुद्धो मानसी शुद्धिं परमां परमर्षितः ।
संप्राप्य भरतो रेजे शरदीबाम्बुजाकरः ॥ 164 ॥

जिस प्रकार शरद ऋतु में प्रबुद्ध अर्थात् खिला हुआ कमलों का समूह सुशोभित होता है । उसी प्रकार महाराज भरत, परम भगवान ऋषभदेव से प्रबुद्ध होकर तत्वों का ज्ञान प्राप्त कर मन की परम विशुद्धि को प्राप्त हो अतिशय सुशोभित हो रहे थे ।

स लेभे गुरुमाराध्य सम्यग्दर्शन नायकाम् ।
व्रत शीलावली मुक्तेः कण्ठिकामिव निर्मलाम् ॥ 165 ॥

भरत ने गुरुदेव की आराधना कर जिसमें सम्यग्दर्शन रूपी प्रधान मणि लगा हुआ है और जो मुक्ति रूपी लक्ष्मी के निर्मल कण्ठहार के समान जान पड़ती है ऐसी व्रत और शीलों की निर्मल माला धारण की थी । सम्यग्दर्शन के साथ पाँच अणुव्रत और सात शीलव्रत धारण किये थे तथा उनके अतिचारों का बचाव किया था ।

दिदीपे लब्धसंस्कारो गुरुतो भरतेश्वरः ।
यथा महाकरोद् भूतो मणिः संस्कार योगतः ॥ 166 ॥

जिस प्रकार किसी बड़ी खान से निकला हुआ मणि संस्कार के योग से देदीप्यमान होने लगता है उसी प्रकार महाराज भरत भी गुरुदेव से ज्ञानमय संस्कार पाकर सुशोभित होने लगे थे ।

चक्ररत्न की पूजा एवं पुत्र जन्मोत्सव -

अथ चक्रधरः पूजां चक्रस्य विधिवद् व्यधात् ।
सुतोत्पत्तिमपि श्रीमान अभ्यनन्ददनु क्रमात् ॥ 1 ॥ भाग 2 पृ. 1

श्रीमान् चक्रवर्ती भरत महाराज ने विधिपूर्वक चक्ररत्न की पूजा की और फिर अनुक्रम से पुत्र उत्पन्न होने का आनन्द मनाया ।

नादरिद्रीज्जनः कश्चिद् विभोस्तस्मिन् महोत्सवे ।
दारिद्यमर्थिलाभे तु जातं विश्वाशितं भवे ॥ 2 ॥

राजा भरत के उस महोत्सव के समय संसार में कोई दरिद्र नहीं रहा था किन्तु दरिद्रता इस बात की हो गयी थी कि धनदेने पर भीउसे कोई लेने वाला नहीं मिलता था । महाराज भरत के द्वारा दिये हुये दान से याचक लोग इतने अधिक संतुष्ट हो गये

कि उन्होंने हमेशा के लिये याचना करना छोड़ दिया ।

चतुष्केषु च रूयासु पुरस्यान्तर्बहिः पुरम् ।
पुञ्जीकृतानि रत्नानि तदार्थिभ्यो ददौ नृपः ॥ 3 ॥

उस समय राजा ने चौराहों में, गलियों में, नगर केभीतर और बाहर सभी जगह रत्नों के ढेर किये थे और वे सब याचकों के लिये दे दिये थे ।

अभिचार क्रियेवासीच्चक्रपूजास्य विद्विषाम् ।
जगतः शान्तिकर्मेव जातकर्माप्यभूत्तदा ॥ 4 ॥

उस समय भरत ने जो चक्ररत्न की पूजा की थी वह उसके शत्रुओं के लिये अभिचार किया अर्थात् हिंसाकार्य के समान मालूम हुई थी और पुत्र जन्म का जो उत्सव किया था वह संसर को शान्ति कर्म के समान जान पड़ा था ।

संगोष्ठी को संबोधन करते हुए राज. विधानसभा अध्यक्ष श्री शान्तिलाल चपलोत ।

2 भरत की दिग्विजय

अथ कृत्वात्मजोत्पतौ भरतः सुमहोत्सवम् ।
कृत चक्रमहोऽयासीत् षट् खण्डविजिगीषमा ॥1॥ (ह.पु.प.11)

अथानन्तर समवशरण से आकर भरत ने पुत्र-जन्म का उत्सव किया, चक्ररत्न की पूजा की और उसके बाद छः खण्डों को जीतने की इच्छा से प्रस्थान किया ।

चतुरंङ्गमहासेनो नृपचक्रेण सङ्गतः ।
अग्रप्रस्थित चक्रेण युक्तो दिक्चक्रिणां नृणाम् ॥2॥

उस समय चतुरङ्ग सेना उसके साथ थी, वे राजाओं के समूह से युक्त थे और नाना दिशाओं से आये हुए अपार जनसमूह के आगे-आगे चलने वाले चक्ररत्न से युक्त थे ।

भरत की देवों पर विजय-

वे गंगा नदी के किनारे-किनारे चल कर गंगासागर पर पहुँचे । वहाँ गंगा द्वार पर उन्होंने मन,वचन,काय की क्रिया को प्रशस्त कर तीन दिन का उपवास किया जिसमें दो घोड़े जुते हुये थे ऐसे वेगशाली रथ पर सवार होकर उन्होंने द्वार खोला और समुद्र में घुटने पर्यन्त प्रवेश किया । उस समय लम्बी भुजाओं के धारक भरत अपने हाथ में वज्र काण्ड नामक धनुष लिये हुए थे तथा वैशाख आसन से खड़े थे। वे दृष्टि को स्थिर करने, कड़ी मुट्ठी बाँधने और डोरी पर बाण स्थापित करने में अत्यन्त निपुण थे । उसी समय उन्होंने अपने नाम से चिह्नित अमोध नाम का शीघ्रगामी बाण छोड़ा । वज्र के समान चमकता हुआ बाण शीघ्र ही बारह योजन जाकर मगध देव के भवन में गिरा और उसने भवन में प्रवेश करते ही समस्त आकाश को शब्दायमान कर दिया । बाण के गिरते ही मगध देव का भवन और हृदय दोनों ही एक साथ हिल उठे । वह बहुत क्षोभ को प्राप्त हुआ । परन्तु जब उसने चक्रवर्ती के नाम से चिह्नित बाण को देखा और चक्रवर्ती उत्पन्न हो चुका है यह जाना, तब वह अपने पुण्य को अल्प जान अपनी निन्दा करने लगा । तद्नन्तर जिसका मानखण्डित हो गया था ऐसा देव हाथों में रत्न लेकर भरत के पास आया । आकर उस बुद्धिमान देव ने पृथ्वी का सार-भूत हार, मुकुट रत्ननिर्मित दो कुण्डल, अच्छे-अच्छे रत्न, वस्त्र तथा तीर्थोदक की भेंट दी और कहा कि हे स्वामिन् ! बताइये मैं क्या करूँ ? मुझे आज्ञा

दीजिए । तदनन्तर भरत से विदा हो वह अपने स्थान पर गया और भरतजी भी वहाँ से चलकर दक्षिण दिशा में रहने वाले महाबलवान् भूत और व्यान्तर देवों के समूहों को वश में करते हुए समुद्र के वैजयन्त-द्वार पर पहुँचे । वहाँ पर उन्होंने मगध देव के समान उस प्रदेश के स्वामी वरतनु देव को बुलाया और वरतनु देव ने आकर चूडामणि, सुन्दर कण्ठद्वार, कवच, वीरों के बाजूबन्द, कड़े और करधनी भेंट कर भरत को प्रणाम किया । तद्नन्तर सेवक की वृत्ति को स्वीकार करने वाला वरतनु भरत से विदा ले अपने स्थान पर चला गया । वहाँ चलकर भरत पश्चिमी दिशा मे समस्त राजाओं के वश करते हुये वेदिका के किनारे -किनारे चल कर सिन्धु नदी के मनोहर द्वार पर पहुँचे । वहाँ इन्द्र के समान पराक्रम को धारण करने वाले चक्रवर्ती भरत ने गंगा द्वार के समान वहाँ के अधिपति प्रभास देव को नम्रीभूत कर अपने वश किया तथा उससे सन्तानक वृक्षों के पुष्पों की उत्तम माला, मोतियों की जाली, मुकुट और रत्नों से चित्र-विचित्र कटी सूत्र प्राप्त किया ।

भरत का विजयार्ध पार होना -

तद्नन्तर भरत, चक्ररत्न के पीछे-पीछे चलकर विजयार्ध पर्वत की वेदिका के समीप आये । वहाँ उन्होंने उपवास पर पर्वत के अधिष्ठाता (विजयार्ध कुमार) देव का स्मरण किया । वह देव अपने अवधि ज्ञान से भरत के यहाँ आया । उसने भरत को प्रणाम कर बड़ी ऋद्धियों से उनका अभिषेक किया तथा झारी, कलश जल उत्तम सिंहासन, छत्र और दो चमर भेंट कर कहा कि मैं आपका सेवक हूँ - आपका सेवक हूँ । इस प्रकार निवेदन कर वह चला गया । राजा भरत वहाँ चक्ररत्न की पूजा कर समिस्त गुहा के द्वार पर आये । वहीं घबराया हुआ कृतमाल नामक देव उनके पास आया । और तिलक आदि चौदह दिव्य आभूषण देकर तथा प्रणाम कर मैं आपका हूँ यह कहता हुआ चला गया । राज राजेश्वर भरत की आज्ञा से उनके अयोध्य नामक सेनापति ने सुआ के समान कान्ति वाले कुमुद्य मेलक नामक अश्वरत्न पर सवार हो तथापीछे की ओर अपना मुख कर दण्ड रत्न से गुफा द्वार के किवाड़ों को ताड़ित किया और ताड़ित कर वह एकदम पीछे भाग गया । खुला हुआ गुफा द्वार जब छः माह में ऊष्म रहित हो गया तब चक्रवर्ती ने विजय पर्वत नामक हाथी पर सवार हो सेना के साथ उसमें प्रवेश किया । गुफा के बीच में उन्मग्न जला और निमग्न जला नाम की दो नदियाँ थी, उनके तट पर भरत ने सेनाओं को छोड़ दिया उन्होंने विश्राम कराया । इस गुफा में निरन्तर अंधकार रहता था जिसे भरत ने काँकड़ी मणि की किरणों

से दूर कर दिया था । भरत की सेना ने वहाँ आलस्य रहित होकर एक दिन-रात निवास किया । काम दृष्टि नामक गृह पतिरत्न और रत्नभद्र मुख नामक स्थपतिरत्न इन दोनों ने उन नदियों पर मजबूत पुल बनाये । सेना उन पुलों के द्वारा शीघ्र ही नदियों को पार कर आगे बढ़ गई और पहले की तरह उत्तर द्वार को खोल कर उत्तर भारत में जा पहुँची ।

भरत का उत्तर भारत के म्लेच्छों को जीतना -

उत्तर भारत के हजारों म्लेच्छ राजा चक्रवर्ती की अपूर्व सेना को देख कर क्षुभित हो गये और शीघ्र ही सामने आकर अनायास युद्ध करने लगे । तद्नन्तर क्रोध से भरे हुये अयोध्य सेनापति ने युद्ध में म्लेच्छ राजाओं के साथ युद्ध कर उन्हें शीघ्र ही खदेड़ कर अपना 'अयोध्य' नाम सार्थक किया । सेनापति से भयभीत हुए म्लेच्छ अपने कुल देवता दर्भशय्या पर शयन करने वाले एवं भयंकर मेघमुख नामक कुमारों की शरण गये । जिससे मेघ मुख देव आकाश को व्याप्त कर युद्धके लिये आ डटे। जयकुमार ने उनके साथ युद्ध कर उन्हें परास्त कर दिया और स्वयं 'मेद्यस्वर' यह नाम प्राप्त किया । कुछ देर बाद मेघ मुख देव भयंकर मेघों से आकाश को व्याप्त कर मुट्ठी बराबर मोटी-मोटी धाराओं से सेना के मस्तक पर जल वर्षा करने लगे । तद्नन्तर जिससे बिजली के साथ वज्र की भयंकर गर्जना हो रही थी । ऐसी जलवृष्टि देखकर चक्रवर्ती ने सेना के नीचे चर्म रत्न और ऊपर छत्र रत्न फैला दिया बारह योजन फैली हुई एवं जल के भीतर तैरती हुई सेना अण्डों के समान जान पड़ती थी । वह सेना रात-दिन तक इसी तरह भयभीत रही । तदनन्तर निधियों के स्वामी चक्रवर्ती ने कुपित होकर गणबद्ध देवों को आज्ञा दी और उन्होंने उन मेघ मुख देवों को परास्त कर खदेड़ दिया । तत्पश्चात् जिन्होंने वृष्टिका संकोच कर लिया था । ऐसे मेघ मुख देवों की प्रेरणा पाकर वे म्लेच्छ राजा उत्तमोत्तम कन्याएँ लेकर चक्रवर्ती की शरण में आये । चक्रवर्ती ने उन भयभीत तथा आज्ञा पाने की इच्छा से करने वाले म्लेच्छ राजाओं को अभयदान दिया ।

भरत का हिमवान् पर्वत जीतना -

उसके बाद श्रम से रहित हो सिन्धु नदी की वेदिका के किनारे -किनारे गमन किया बीच सिंधु कूट पर निवास करने वाले सिंधु देवी ने भरत का अभिषेक कर उन्हें पाद पाठ से सुशोभित दो उत्तम आसन भेंट किये। चक्रवर्ती सेना को हिमवान् पर्वत को तराई तराई में ठहराककर तथा स्वयं तीन दिन उपवास का नियम लेकर

दर्भशय्या पर आरूढ़ हुए । तद्नन्तर जिन्होंने तीर्थ जल से स्नान किया था, उत्तम वेश-भूषा धारण की थी, जो घोड़ों के रथ पर सावर थे, जिनके आगे-आगे चक्ररत्न चल रहा था और जो रण में अत्यन्त कुशल थे, ऐसे भरत, जहाँ हिमवान् पर्वत का हिमवत् नामक छोटा कूट था, वहाँ आये हुए और बाण हाथ में ले तथा वैशाख आसन से खड़े होकर बोले कि हे इस देश में रहने वाले नागकुमार, सुवर्ण कुमार आदि देवों! तुम लोग शीघ्र ही मेरी आज्ञा सुनों । यह कह कर उन्होंने धनुष खींचकर बाण छोड़ा। वज्र के समान शब्द करता हुआ बाण बारह योजन दूर जाकर गिरा तथा हिमवत् कूट पर रहने वाले देव उसे देखकर भरत के पास आये । उसने दिव्य औषधियों की माला तथा दिव्य हरि चन्दन देकर भरत की पूजा की । तद्नन्तर आज्ञा की इच्छा करता हुआ वह भरत से विदा ले अपने स्थान पर चला गया ।

भरत द्वारा अपनी प्रशस्ति लिखना -

आगत्य चक्रवर्ती च ततो वृषभपर्वत ।
तत्रालिरवन्निजं नाम काकण्या स परिस्फुटम् ॥47॥
वृषभस्य सुतो भोऽहं चक्री भरत इत्यसौ ।
प्रवाच्य विजयार्द्धस्य वेदिकामगमत् प्रभुः ॥48॥ (हरि. पुराण सर्ग 11)

चक्रवर्ती वहाँ से चलकर वृषभाचल पर्वत पर आये और वहाँ उन्होंने काकणी रत्न से साफ-साफ अपना यह नाम लिखा कि " मैं भगवान वृषभदेव का पुत्र भरत चक्रवर्ती हूँ । " नाम लिखकर तथा बाँचकर वे विजयार्ध पर्वत की वेदिका के समीप आये ।

आदि पुराण में आचार्य श्री भगवत जिनसेन ने इसका वर्णन सविस्तार निम्न प्रकार किया है --

यो योजनशतोच्छ्रायो मूले तावच्च विस्तृतः ।
तदर्द्धविस्तृतिर्मूर्ध्नि भुवो मौलिरिवोद्गतः ॥131॥

(आदि.II पु.पृ.124)

जो सौ योजन ऊँचा है, मूल तथा ऊपर क्रम से सौ और पचास योजन चौड़ा है और ऊपर की ओर उठा हुआ होने से पृथ्वी के मस्तक के समान जान पड़ता है।

जिसके ऊपर के मनोहर प्रदेश केलों के समूह से सुशोभित लतागृहों से आकाशगामी देव तथा विद्याधरों के उपभोग करने योग्य है, नाग, राहजना और नागकेशर के वृक्षों से घिरे हुए तथा सेवन करने योग्य जिस पर्वत के समीप के वनों

को देव लोग कभी नहीं छोड़ते हैं । उनके तट पर लगे हुए स्फटिक मणियों की फैलती हुई प्रभा से जिसने समस्त दिशाएँ व्याप्त कर ली हैं, जिसका शरीर शरद्ऋतु के बादलों से बना हुआ-सा जान पड़ता है और जो सदा देव और विद्याधरों से सहित रहता है, ऐसे उस पर्वत को लोक के एक आभूषण के समान रखते हुए श्रीमान् भरत ने अपने यश का प्रतिबिम्ब माना था । जो एक सफेद रंग का है और जो कल्पान्त काल तक कभी नष्ट नहीं होता ऐसे उस वृषभाचल को अपने यश की राशि के समान देखते हुए महाराज भरत बहुत ही आनन्दित हुए थे । उस समय वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो समस्त शत्रुओं के सर्वमुखी भाग्य को नष्ट करने वाले चक्रवर्ती भरत को अपने समीप आता हुआ जानकर चारों ओर बहनेवाले वन के वायु के द्वारा सामने जाकर उनका स्वागत-सत्कार ही कर रहा हो । वहाँ पर भरत ने उस पर्वत के किनारे के समीप विश्राम करते हुए, विद्याधर-नागकुमार और किन्नर देवों के द्वारा गाया हुआ अपना निर्मल यश भी सुना था । स्फटिक के समान निर्मल और विजयालक्ष्मी का मुख देखने के लिए मंगलमय दर्पण के समान उस वृषभाचल के किनारे की दिवारें भरत का मन हरण कर रही थी । समस्त पृथ्वी को जीतने वाले चक्रवर्ती भरत को उस पर्वत के किनारे की शिला की दीवारों पर अपने नाम के अक्षर लिखने में बहुत कुछ संतोष हुआ था । चक्रवर्ती भरत ने काकिणी रत्न लेकर ज्यों ही वहाँ कुछ लिखने की इच्छा की त्यों ही उन्होंने वहाँ लिखे हुए हजारों चक्रवर्ती राजाओं के नाम देखे। असंख्यात करोड़ कल्पों में जो चक्रवर्ती हुए थे उन सबके नामों से भरे हुए उस वृषभाचल को देखकर भरत को बहुत ही विस्मय हुआ । तदनन्तर जिसका कुछ अभिमान दूर हुआ है ऐसे चक्रवर्ती ने आश्चर्यचकित होकर इस भरत क्षेत्र की पृथ्वी को अनन्यशासन अर्थात् जिस पर दूसरे का शासन न चलता हो ऐसा नहीं माना था भावार्थ -वृषभाचल की दीवारों पर असंख्यात चक्रवतियों के नाम लिखे हुए देखकर भरत का सब अभिमान नष्ट हो गया और उन्होंने स्वीकार किया कि इस भरतक्षेत्र की पृथ्वी पर मेरे समान अनेक शक्तिशाली राजा हो गये हैं । चक्रवर्ती भरत ने किसी एक चक्रवर्ती के नाम की प्रशस्ति को स्वयं अपने हाथ से मिटाया और वैसा करते हुए उन्होंने प्राय: समस्त संसार को स्वार्थपरायण समझा ।

अथानन्तर -यश ही जिसका धन है ऐसे चक्रवर्ती ने अपने हाथ के तलभाग के समान चिकने उस शिलापट्ट पर नीचे लिखे अनुसार उत्कृष्ट अर्थ से भरी हुई प्रशस्ति लिखी । *''स्वस्ति श्री इक्ष्वाकु वंशरूपी आकाश का चन्द्रमा और चारों दिशाओं की*

पृथ्वी का स्वामी मैं भरत हूँ, मैं अपनी माता के सौ पुत्रों में से एक बड़ा पुत्र हूँ, श्रीमान् हूँ, मैंने समस्त विद्याधर देव और भूमिगोचरी राजाओं को नम्रीभूत किया है, प्रजापति भगवान् वृषभदेव का पुत्र हूँ, मनु हूँ, मान्य हूँ, शूरवीर हूँ, पवित्र हूँ, उत्कृष्ट बुद्धि का धारक हूँ, चरमशरीर हूँ, धीरवीर हूँ, चक्रवर्तियों में प्रथम हूँ और इसके सिवाय जिस विजयी ने दिग्विजय के समय समस्त पृथ्वीमण्डल की परिक्रमा की है अर्थात् समस्त पृथ्वीमण्डल पर आक्रमण किया है, जिसके जल और स्थल में चलने वाले अठारह करोड़ घोड़े हैं, जिसकी विजय सेना में चौरासी लाख मदोन्मत्त हाथी हैं, जिसकी दिग्विजय के समय चारों ओर उठी हुई कबूतर के गले के समान कुछ-कुछ मलिन सेना की धूलि से समस्त दिशाओं के साथ -साथ आकाश भर जाता है, समस्त दिशाओं को वश में करने वाले जिसका चन्द्रमा की कलाओं के समान निर्मल यश कुलपर्वतों के मध्यभाग में देव लोग बार-बार गाते हैं, दिग्विजय के समय चक्र के पीछे -पीछे चलने से थकी हुई जिसकी सेनाओं ने हिमवान् पर्वत की तराई कोउल्लंघन कर दिशाओं के अन्तभाग में विश्राम लिया है, जो श्री नाभिराज का पौत्र है, श्री वृषभदेव का पुत्र है, जिसने छह खण्डों से सुशोभित इस समस्त पृथ्वी का पालन किया है और जो समस्त राजाओं को जीतने वाला है ऐसे भरत ने लक्ष्मी को नश्वर समझकर जगत् में फैलने वाली अपनी कीर्ति को इस पर्वत पर प्रस्थापित किया है ।''

इस प्रकार चक्रवर्ती ने अपनी प्रशस्ति स्वयं अक्षरों के द्वारा लिखी, जिस समय चक्रवर्ती उक्त प्रशस्ति लिख रहे थे उस समय देव लोग उन पर फूलों की वर्षा कर रहे थे । वहाँ जोर-जोर से शब्द करते हुए गम्भीर नगाड़े बज रहे थे, आकाश में देव लोग जय-जय इस प्रकार सैकड़ों आशीर्वाद रूप शब्दों का उच्चारण कर रहे थे । और गंगा नदी के जल की बूँदों के समूह को धारण करता हुआ तथा कल्पवृक्षों के सघन वन को हिलाती हुई वायु धीरे-धीरे बह रही थी भरत नाम के अक्षरों की पंक्ति केवल शिला की दीवार पर ही नहीं लिखी गयी थी । किन्तु उन्होंने काले चिह्न के बहाने से चन्द्रमा के मण्डल में भी लिख दीथी । भावार्थ-चन्द्रमा के मण्डल में जो काला-काला चिह्न दिखाई देता है वह उसका चिह्न नहीं है, किन्तु भरत के नाम के अक्षरों की पंक्ति ही है, यहाँ कवि ने अपह्नुति अलंकार का आशय लेकर वर्णन किया है । अन्य प्रशस्तियों के समान भरत की इस प्रशस्ति में भी लेख साक्षी और उपभोग करने-योग्य क्षेत्र ये तीनों ही बातें थी, क्योंकि लेख तो वृषभाचल पर लिखा ही गया था, दिग्विजय करने से छ: खण्ड भरत उपभोग करने योग्य क्षेत्र था । और देव लोग साक्षी थे अहा, यह चक्रवर्ती बड़ा प्रतापी है क्योंकि इसने समस्त दिशाओं को जीतते

समयपूर्व पश्चिम और दक्षिण के तीनों समुद्र पर्यन्त समस्त भूमण्डल पर आक्रमण किया है - समस्त भारत को अपने वश कर लिया है । यद्यपि विजयार्ध पर्वत उल्लंघन करने योग्य नहीं है, तथापि इसने इसे लीलामात्र में ही उल्लंघन कर दिया है और इसकी कीर्ति स्थल-कमलिनी के समान हिमालय पर्वत की शिखर पर आरूढ़ हो गयी है। इस प्रकार जिनका पराक्रम देख लिया गया है ऐसे उन भरत महाराज की बड़े-बड़े देव भी स्तुति कर रहे थे और अपनी-अपनी स्त्रियों से सहित विद्याधर लोग भी भाग्य से उन्हें बढ़ा रहे थे अर्थात् आशीर्वाद दे रहे थे । (132-162 -आदि.II पृ. 124)

विजयार्ध जय एवं स्त्री रत्न प्राप्त-

वहाँ जाकर उन्होंने उपवास धारण किया । दोनों श्रेणियों के निवासी नमि और विनमि को जब यह ज्ञात हुआ कि भरत वहाँ विद्यमान हैं । तब वे गन्धार आदि विद्याधर के साथ वहाँ आये । समस्त विद्याधरों ने उन्हें नमस्कार किया और भरत ने नमि और विनमि से सुभद्रा नामक स्त्री-रत्न ग्रहण किया । तत्पश्चात् वे गंगा नदी की वेदिका के किनारे-किनारे चलकर गंगा कूट के समीप आये और तीन दिन के उपवास का नियम लेकर वहाँ ठहर गये । वहाँ गंगा कूट पर रहने वाली गंगा देवी ने उनके आने का समाचार जानकर सुवर्णमय एक हजार कलशों से उनका अभिषेक किया । अभिषेक के बाद उसने पादपीठ से युक्त दो रत्नों के सिंहासन भेंट किये । यहाँ विजयार्ध पर्वत का स्वामी विजयार्ध कुमार देव चक्रवर्ती की आज्ञा में खड़ा रहा ।

दिग्विजय पूर्ण -

तदनन्तर वहाँ से चलकर अठारह म्लेच्छ राजाओं को वश करते और उनसे उत्तमोत्तम रत्नों की भेंट स्वीकार करते हुए भरत विजयार्ध की दूसरी गुफा खण्ड प्रताप के समीप पहुँचे । वहाँ वे तीन दिन के उपवास का नियम लेकर ठहर गये । यहाँ नाट्यमाल नामक देव ने उन्हें नाना प्रकार के आभूषण और बिजली के समान चमकते हुए दो कुण्डल भेंट किये । जिस प्रकार पहले अयोध्य सेनापति दण्डरत्न के द्वारा सिन्धु नदी की गुफा का द्वार खोला गया था उसी प्रकार यहाँ भी उसने दण्डरत्न से गंगा नदी की गुफा का द्वार खोला और उस द्वार से प्रवेश कर सेना सहित बाहर निकल आये।

दिग्विजय काल -

विजित्यं भारतं वर्षं स षट्खण्डमखण्डितम् ।
षष्ठि वर्षसहस्रैस्तु विनीतां प्रस्थितः कृती ॥56॥

इस तरह अतिशय कुशल भरत ने साठ हजार वर्षों में छः खण्डों से युक्त समस्त

भरत क्षेत्र को जीतकर अयोध्या नगरी की ओर प्रस्थान किया ।

सम्पूर्ण सेना की शक्ति से भी अधिक शक्ति भरत की छोटी अंगुली में -

षट्खण्डदिग्विजय के उपरान्त एक बार शय्यागृह में सुखनिद्रा के बाद रात्रि के तीसरे पहर में भरतेश्वर उठकर परमात्मयोग में लीन थे । इतने में एक सरस घटना हुई ।

सर्वत्र निस्तब्धता छाई हुई है । वृक्ष का एक पत्ता भी हिल नहीं रहा है । तरंगरहित समुद्र के समान विशाल सेना की हालत हो रही है । सब के सब निद्रा देवी की गोद में विश्रांति ले रहे थे । तब सेना के किसी कोने में दो व्यक्ति आपस में बातचीत कर रहे थे । वे दोनों साले बहनोई थे । उनको किसी कारण से नींद नहीं आ रही थी । अतएव उन्होंने उठकर आपस में रात्रि बिताने के लिए बातचीत करना प्रारम्भ किया । उनमें निम्नलिखित प्रकार बातचीत हुई ।

पहला- एक एक बूँद मिलकर बड़ा सरोवर बनता है, एक-एक डोरी मिलकर बड़ी रस्सी बनती है । इसी प्रकार चक्रवर्ती की भी महिमा बढ़ गई । यदि सेना नहीं हो तो यह भी एक सामान्य मनुष्य ही है ।

दूसरा -बिल्कुल ठीक है, हाथी, घोड़ा आदि सेनाओं के संग्रह से दुनिया को डराया । वस्तुतः शक्ति को देखने पर इसमें क्या है ? हमारे समान ही एक मनुष्य है।

इस प्रकार सेना के आखिर के उत्तर कोने पर उपर्युक्त प्रकार दो विद्याधर बातचीत कर रहे थे, उसे भरतेश्वर ने सुन लिया । भरतेश्वर के कान बहुत तेज हैं। सूर्यविमान में स्थित जिनबिम्ब का दर्शन जो अपनी महल की छत से खड़े होकर करते हैं, अर्थात् जिनके चक्षुरिन्द्रिय की इतनी दूरगति है तो उनके कर्णेन्द्रिय के सम्बन्ध में क्या कहना ? भरतेश्वर ने उस बातचीत को सुनकर मन में विचार किया कि प्रातःकाल होने के बाद इसका उत्तर दूसरे रूप में देना चाहिए ।

नित्यविधि से निवृत्त होकर भरतेश्वर दरबार में आकर विराजमान हुए । दरबार में उस समय मंत्री, मित्र, राजा व प्रजावर्ग आदि सबके सब यथास्थान बैठे हुए थे। भरतेश्वर का मुख आज उदास दिख रहा था । बुद्धिसागर मंत्री ने विचार किया कि शायद भरतेश्वर बाहुबलि के बर्ताव से चिन्तित हैं । उसने निवेदन किया कि स्वामिन्! आपने हम लोगों को कहा था कि इस सम्बन्ध में चिन्ता मत करो, परन्तु आप चिन्ता क्यों कर रहे हैं ? तब उत्तर मेंभरतेश्वर ने कहा कि मैं बाहुबलि के सम्बन्ध में विचार नहीं कर रहा हूँ । आज एकाएक उँगली की नस अकड़कर यह इस की उँगली सीधी

नहीं हो रही है । यह कहते हुए अपने हाथ की छोटी उँगली को झुकाकार मंत्री को बतलाया लोक में सबके शरीर में , व्यवहार में टेढ़ापन नहीं है । फिर आज यह उँगली क्यों टेढ़ी हुई है ? सबको आश्चर्य हुआ । मन्त्री, मित्र आदि चिन्ता में पड़े । उन्होंने उँगली को हाथ लगाया तो भरतेश्वर को बड़ी वेदना हो रही है इस प्रकार की चेष्टा से पुत्रों ने हाथ लगाया तो बड़ी ही दर्दभरी आवाज करने लगे । मन्त्री ने राजवैद्यों को बुलाया, उसी समय सैकड़ों राजवैद्य एकत्र हुए । उन्होंने अनेक जड़ी-बूटियों के औषध से उसे ठीक करने के लिये कहा । अनेक मन्त्रवादी आये । बड़े-बड़े यंत्रवादी आये, पहलवान लोग आये । निमित्त शास्त्री आये खास सम्राट के अंगवैद्य आये । सबने अपनी विद्या के बल से उँगली को सीधा करने की बात कही । लोक में देखा जाता है कि गरीब को बड़े भारी रोग के आने पर उसके चिल्लाते रहने पर भी उसके पास कोई नहीं आता परन्तु श्रीमंत को बिल्कुल छोटा सा दर्द आने पर बिना बुलाये वहाँ पर लोग इकट्ठे होते हैं । यह स्वाभाविक है ।

मन्त्री ने पूछा कि स्वामिन ! इनमें से आप कौन से प्रयोग को बन्द करते हैं। उत्र में भरतेश्वर ने कहा कि औषध वगैरह की आवश्यकता नहीं, उपाय से ही इसे सीधी करनी चाहिए । बुलाओ पहलवानों को बुलावो, भरतेश्वर ने कहा । तत्क्षण पहलवान लोग आकर सामने उपस्थित हुए । उनसे कहा कि तुम लोग इस उँगली को पकड़कर खींच कर सीधी करो । कई पहलवानों ने मिलकर खींचा तो भी सीधी नहीं हुई । भरतेश्वर ने कहा कि डरो मत, जोर से खींचो । वे पहलवान जोर से उस उँगली को खींचने लगे, तथापि वे उसे सीधी नहीं कर सके। भरतेश्वर ने जरा-सी उंगली को ऊपर उठाया तो वे सबके सब चमगीदड़ के समान ऊँगली में झूलने लगे। सम्राट ने कहा कि और एक उपाय है । एक सांखल डालकर खींचो, वैसे ही उन लोगों ने किया । उससे भी कोई उपयोग नहीं हुआ । भरतेश्वर ने विश्वकर्मा की ओर देखकर कहा कि एक सांखल ऐसी निर्माण करो जो सारी सेना में पहुँचे । वहाँ देरी क्या थी ? उसी समय विश्वकर्मा ने उसका निर्माण किया । आज्ञा हुई कि सेना के समस्त योद्धा इस सांखल को पकड़कर सारी शक्ति लगाकर खींचे । कोई उपयोग नहीं हुआ । फिर कहा कि हाथी, घोड़ों आदि सब के सब लगाकर इस सांखल को खींचें । सम्राट के पुत्र व मित्रों ने भी उसे हाथ लगाना चाहा, परन्तु भरतेश्वर ने इशारे से उनको रोका । भरतेश्वर के हाथ का स्पर्श होते ही वह लोहे की सांखल सोने की बन गई । सारी सेना अपनी सारी शक्ति लगाकर उस सांखल को खींचने लगी परन्तु

भरतेश्वर अपने स्थान से जरा भी नहीं हिले, छोटी-सी उँगली भी सीधी नहीं हुई । जिस समय जोर लगाकर वे खींच रहे थे अपने हाथ को जरा ढीला कर दिया तो वे सबके सब चित्त होकर गिर पड़े, भरतेश्वर गम्भीरता से बैठे थे । मन्त्री ने कहा कि ये गिरे क्यों ? सबकों उठने के लिये कहो । तब वे उठे । भरतेश्वर ने कहा कि और एक उपाय करें, सारी सेना की शक्ति लगाने पर भी उँगली सीधी नहीं होती है । आप लोग सबके सब जोर से खींच के रखो, में इस तरफ खींचता हूँ, तब क्या होता है देखें । भरतेश्वर ने अपनी ओर जरा झटका देकर खींचा तो सबके सब मुँह नीचे गिरे। मालूम हो रहा था, शायद वे सम्राट को साष्टांग नमस्कार ही कर रहे हैं । 48 कोस में व्याप्त सारी सेना ने शक्ति लगाई तो भी छोटी-सी उँगली सीधी नहीं हुई । जब छोटी उँगली में इतनी शक्ति है तो फिर अंगूठे में कितनी शक्ति होगी, मुष्ठी में कितनी शक्ति होगी और सारे शरीर में कितनी शक्ति होगी ? सम्राट की शक्ति अवर्णनीय है । भरतेश्वर मुस्कराये , मंत्री-मित्रों ने समझ लिया कि वस्तुत: सम्राट की उँगली में कोई रोग नहीं है । यह तो बनावटी रोग है । तब उन लोगों ने कहा स्वामिन् ! दूसरों से यह रोग दूर नहीं हो सकता है । आप ही अब उपाय करें । तब उँगली की सांखल को हटाकर **''गुरु हंसनाथाय नमः स्वाहा''** करते हुए उंगली को सीधी कर दी । सब लोगों ने हर्ष से भरतेश्वर को नमस्कार किया । देवों ने पुष्पवृष्टि की । साड़े तीन करोड़ बाजे एकदम बजे । सर्वत्र हर्ष ही हर्ष मच गया है ।

मंत्री ने निवेदन किया कि स्वामिन् ! आपने ऐसा क्यों किया ? तब उत्तर में भरतेश्वर ने कहा कि रात्रि के तीसरे पहर में उत्तर दिशा की तरफ दो विद्याधरों ने आपस में बातचीत की थी । उसके फलस्वरूप मुझे बतलाना पड़ा कि मेरी छोटी उँगली में कितनी शक्ति है ? इतने में दो विद्याधरों ने आकर साष्टांग नमस्कार किया। कहने लहे कि स्वामिन् ! हम अज्ञानवश बोल गये । हमें क्षमा करें । सब लोगों को आश्चर्य हुआ । उन दोनों विद्याधरों के प्रति तिरस्कार उत्पन्न हुआ । मन्त्री ने कहा कि जब पुत्रों को सांखल खींचने से रोका तभी मैं समझ गया कि यह बनावटी रोग है । व्यतंरों ने कहा कि हम लोग भूल गये। नहीं तो अवधिज्ञान को लगाकर देखते तो पहले ही मालूम हो जाता । इस प्रकार वहाँ तरह-तरह की बातचीत चल रही थी।

भरतेश्वर ने कहा कि मन्त्री ! सिर्फ दो व्यक्तियों के आपस में बोलने से इन सारी प्रजाओं को दु:ख हुआ । अब जरा गड़बड़ बन्द करो, सबको इस सुवर्ण की सांखल के टुकड़े कर बाँट दो । मन्त्री ने उसी प्रकार किया । रोने वाले बच्चों को

जिस प्रकार गन्ने को टुकड़ा कर बाँट दिया जाता है उसी प्रकार थकी हुई सेना को सोने की सांखल को टुकड़ा कर बाँट दिया । सब लोग प्रसन्न हुए । सब लोग गठडी बाँध-बाँध कर स्वत: सम्राट के महल की ओर चले गये ।

पाठकों को आश्चर्य होगा कि भरतेश्वर की छोटी सी उँगली में इस प्रकार की शक्ति कहाँ से आई । असंख्य सेना भी उनकी एक उँगली के बराबर नहीं है । तब उनके शरीर में कितनी सामर्थ्य होगी ? इसका क्या कारण है ? यह सब उनके पूर्वोपार्जित पुण्य का फल है । वे उस परमात्मा का सदा स्मरण करते हैं जो अनन्त शक्ति से संयुक्त है । फिर उनको इस प्रकार की शक्ति प्राप्त हों इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? उनका सदा चिन्तवन है --

हे परमात्मान् ! तीन लोक को इधर-उधर हिलाने का सामर्थ्य तुझमें मौजूद है । वह वास्तविक व अनन्त सामर्थ्य है । तुम अजरामररूप हो, आनन्दध्वज हो इसलिए मेरे हृदय में सदा बने रहो । (भरतेशवैभव भाग II, पृ. 250)

सुदर्शन चक्र का अयोध्या में अप्रवेश -

चक्रे सुदर्शनऽयोध्यामविशत्यथ चक्रभृत् ।
बुद्धिसागरमप्राक्षीत् सन्दिहान: पुरोधसम् ॥57॥

समीप आने पर जब सुदर्शन चक्र ने अध्योध्या में प्रवेश नहीं किया तब भरत ने सन्देहयुक्त होकर बुद्धिसागर पुरोहित से पूछा कि समस्त भारत क्षेत्र को वश कर लेने पर भी यह दिव्य चक्र रत्न अयोध्या में प्रवेश क्यों नहीं कर रहा है ? अब तो हमारे युद्ध के योग्य कोई नहीं है ?

तदाकर्ण्य वचस्तूर्णं तेषां प्रेषयति स्म स: ।
ससामोपप्रदानादिनीतिपूर्वं वचोहरान् ॥60॥

यह सुनकर भरत ने शीघ्र ही उनके पास साम, दाम आदि नीति के साथ दूत भेजे।

भाइयों को वैराग्य-

ततस्ते तन्निमित्तेन मानिनो लब्धबोधय: ।
स्वराज्यान्यत्यजस्त्यागं मन्यमाना महोत्सवम् ॥61॥

तदनन्तर इस निमित्त से जिन्हें बोधि की प्राप्ति हुई थी ऐसे भरत के अभिमानी भाइयों को ही महोत्सव मान अपने-अपने राज्य छोड़ दिये ।

प्रपद्य शरणं सर्वे नाभेयं भवभीरव: ।
मानशल्य विनिर्मुक्ता: प्रव्रज्यां मोक्षिणो दधु: ॥62॥

जो संसार से भयभीत थे, जिनकी मानरूपी शल्य छूट चुकी थी और जो अंतरंग में मोक्ष की इच्छा रखते थे ऐसे भरत के समस्त भाइयों ने भगवान वृषभदेव के समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली ।

भाइयों से त्यक्त देश -

कुरुजाङ्गलपञ्चालसूरसेनपटच्चरा: ।
तुलिङ्ग-काशि-कौशल्य-मद्रकारवृकार्थका: ॥64॥
सोल्वावृष्टत्रिगर्ताश्च कुशाग्रो मत्स्यनामक: ।
कुणीयान् कोशलो मोक्ष देशास्ते मध्यदेशका: ॥65॥

कुरुजाङ्गल, पञ्चाल, सूरसेन ,पटच्चर, तुलिङ्ग, काशि, कौशल्य, मद्रकार, वृकार्थक, सोल्व,अवृष्ट, निगर्त, कुशाग्र, मत्स्य, कुणीयान्, कौशल और मोक्ष ये मध्यदेश थे ।

बाह्लीकात्रेयकाम्बोजा यवनाभीरमद्रका: ।
क्वाथतोश्च शूरश्च वाटवानश्च कैकय: ॥66॥
गान्धार: सिन्धुसौवीरभारद्वाजदशेरुका: ।
प्रास्थालास्तीर्णकर्णाश्च देशा उत्तरत: स्थिता: ॥67॥

वाह्लीक, आत्रेय, काम्बोज, यवन ,आभीर, मद्रक,क्वाथतोय,शूर,वाटवान, कैकय, गान्धार, सिन्धु,सौवीर,भारद्वाज, दशेरुक, प्रास्थाल और तीर्णकर्ण ये देश उत्तर में स्थित थे ।

खङ्गाङ्गारकपौण्ड्राश्च मल्लप्रवकमस्तका: ।
प्राद्योक्षिषश्च वङ्गश्च मगधो मानवर्तिक: ॥68॥
मलदो मार्गवश्चामी प्राच्यां जनपदा: स्थिता: ।
वाणमुकश्च वैदर्भा: माणव: सककापिरा: ॥69॥
मूलकाश्मकदाण्डीक कलिङ्गासिकङ्गकुन्तला ।
नवराष्ट्रो माहिषक: पुरुषो भोगवर्धन: ॥70॥
दक्षिणात्या जनपदा निरुच्यन्ते स्वनामभि: ।
माल्यकल्लीवनोपान्तदुर्गसूपरिकबुका: ॥71॥
काक्षिनासारिकागर्ता: ससारस्वततापसा: ।
माहेभो भरुकच्छश्च सुराष्ट्रो नर्मदस्तथा ॥72॥

एते जनपदाः सर्वे प्रतीच्यां नामभिः स्मृताः ।
दशार्णकेति किष्कन्धस्त्रिपुरावर्त्तनैषधाः ॥73॥
नेपालोत्तमवर्णश्च वैदिशान्तपकौशलाः ।
पत्तनो विनिहात्रश्च विन्ध्यापृष्टनिवासिनः ॥74॥
भद्रवत्सविगेहाश्च कुशभङ्गाश्च सैतवाः ।
वज्रखण्डिक इत्येते मध्यदेशाश्रिता मताः ॥75॥

खङ्ग, अंगारक पौण्ड्र, मल्ल, प्रवक, मस्तक, प्राद्योतिष , वङ्ग, मगध, मानवर्त्तिक , मलद और भार्गव , ये पूर्व देश दिशा में स्थित थे । बाणमुक्ता, वैदर्भ, माणव ,सककापिर, मूलक ,अश्मक, दाण्डीक, कलिङ्ग, आंसिक, कुन्तल, नवराष्ट्र, माहिषक, पुरुष और भोगवर्धक ये दक्षिण दिशा के देश थे । माल्य, कल्लीवनोपान्त, दुर्ग, सुपरि, कर्बुक, काक्षि, नासारिक, अगर्त, सारस्वत, तापस, महिम, भरुकच्छ, सुराष्ट और नर्मद ये सब देश पश्चिम दिशा में स्थित थे । दशार्णक, किष्कन्ध, त्रिपुर,आवर्त, नैषध, नैपाल, उत्तमवर्ण, वैदिश, अन्तप, कौशल, पत्तन और विनिहात्र, ये देश विन्ध्याचल के ऊपर स्थित थे । भद्र, वत्स,विदेह, कुश, भङ्ग ,सतैव और वज्रखण्डिक ये देश मध्य देश के आश्रित थे ।

स्वाधीनता प्रेमी बाहुबली -

अथ बाहुबली चक्रे चक्रेशंप्रत्यवस्थितिम् ।
सन्दधानोमनश्चक्रे चक्रेऽलातमये तथा ॥77॥

(पु. 203 हरि.पु.सर्ग)

अथानन्तर कुमार बाहुबली ने भरत चक्रवर्ती के प्रति अपनी प्रतिकूलता प्रकट की । उन्होंने उनके सुदर्शन चक्र को अलात-चक्र के सदृश तुच्छ समझा और मैं आपके आधीन नहीं हूँ यह कहकर दूत भेज दिया तथा वे शीघ्र ही अक्षौहिणी सेना साथ ले युद्ध के लिये पोदनपुर से निकल पड़े । वस्तुतः बाहुबली के मन में भरत के प्रति भक्ति अनुराग व आदर भाव भी था, परन्तु वह भाव, ज्येष्ठ भरत के प्रति था न कि चक्रवर्ती भरत के प्रति । स्वयं ऋषभदेव जिस प्रकार भरत को राज्य के कुछ भाग बाँट कर दिये थे उसी प्रकार बाहुबली को भी । इसलिये नैतिक दृष्टि से जिस प्रकार भरत का अपने राज्य पर अधिकार था उसी प्रकार बाहुबली का अपने राज्य पर भी अधिकार था । बाहुबली एक स्वाधीनता प्रेमी राजा होने के कारण वह अपनी स्वाधीनता को खोकर पराधीन होकर भरत की आधीनता स्वीकार नहीं करना चाहता

था । यह नैतिकता एवं राजनैतिक दृष्टि से ठीक ही है क्योंकि प्रत्येक जीव को स्वतंत्रता में जीवित रहने के लिये नैतिक दृष्टि से प्राप्त अधिकार का उपभोग करने के लिये पूर्ण स्वतंत्रता है । केवल दूसरों की हिंसा करना हिंसा नहीं है परन्तु दूसरों के नैतिक अधिकार छीनना भी हिंसा है । यदि कोई अनैतिक दृष्टि से दूसरों का अधिकार छीनता है तो उस समय में योग्य नैतिक-पूर्ण प्रतिरोध, करना भी दूसरों का कर्त्तव्य हो जाता है।

जिस प्रकार प्रत्येक जीव का जीवित रहना व स्वनैतिक अधिकार का उपभोग करना जन्मसिद्ध अधिकार है उसी प्रकार दूसरों को भी जीने देना एवं दूसरों के अधिकार स्वीकार करना भी जन्मसिद्ध कर्त्तव्य है । एक दिन एक विद्यार्थी ने महात्मा गाँधी से जिज्ञासा प्रकट की, महात्मा जी मेरी स्वतंत्रता की सीमा कहाँ तक है ? तो महात्मा जी बोले ,''जहाँ से दूसरों की स्वतंत्रता की सीमा प्रारम्भ नहीं होती है वहाँ तक । ''इससे ज्ञात होता है कि जैसे स्वयं स्वतंत्रता से जीना चाहते हैं उसी प्रकार दूसरों को भी स्वतंत्रता से जीने देना चाहिये । अमेरिका के महामना राष्ट्रपति अब्राह्मलिंकन की भी मान्यता इसी प्रकार थी, वे कहते थे कि ''मेरी मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्रकृति प्रदत्त स्वभाव अनुसार मन माफिक काम करने तथा अपनी मेहनत का फल पाने का अधिकार है जब तक कि उसका यह अधिकार दूसरों के अधिकार में हस्तक्षेप न करे । '' इससे प्रतीत होता है कि बाहुबली उत्श्रृंखल, उदण्ड, भातृद्रोही अहंकारी नहीं थे परन्तु विश्व के समक्ष स्वतंत्रता का मूल्य नैतिक अधिकार, देश-प्रेम, आत्मगौरव को प्रस्तुत करने के लिये भाई के विरूद्ध नहीं परन्तु परसत्ता लोलूपी भरत के विरूद्ध प्रति आक्रमण किए थे ।

इस युग का आद्य धर्म -युद्ध -

चक्रवर्त्यपि सम्प्राप्तः सैन्यसागररुद्धदिक् ।
विततापरदिग्भागे चम्बोः स्पर्शरतयोरभूत् ॥79॥

(हरि.पु.सर्ग.प.203)

इधर सेना रूपी सागर से दिशाओं को व्याप्त करते हुए चक्रवर्ती भरत भी आ पहुँचे जिससे विततता नदी के पश्चिम में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई ।

उभये मन्त्रिणो मन्त्रं मन्त्रयित्वाहुरीशयोः ।
माभूज्जनपदक्षयो धर्मयुद्धमिहास्त्विति ॥80॥

तदनन्तर दोनों राजाओं के मन्त्रियों ने परस्पर सलाह कर कहा कि देशवासियों का क्षय न हो इसलिए दोनों ही राजाओं में धर्म युद्ध हो ।

इस युग का प्रथम भ्रातृ-युद्ध -

प्रतिपद्य वाचस्तौ तत दृष्टि युद्ध प्रचक्रतुः ।
चिरं निमेषमुक्ताक्षौ दृष्टौ खे खेचरामरैः ॥ 81 ॥
कनिष्ठोऽत्राजयज्ज्येष्ठं पञ्चचापशतोच्छ्रितम् ।
ऊर्ध्वदृष्टिमधोदृष्टिस्तदुच्चैः पञ्चविंशतिः ॥ 82 ॥ (हरि. पृ. 203)

भरत और बाहुबली ने मन्त्रियों की यह बात मानकर सर्वप्रथम दृष्टि युद्ध शुरु किया और आकाश में खड़े हुए देव और विद्याधरों ने दोनों को चिरकाल तक टिमकार रहित नेत्रों से खड़े रहे देखा और कोई किसी से हारा नहीं परन्तु अन्त में छोटे भाई ने बड़े भाई को हरा दिया क्योंकि बड़े भाई पाँच सौ धनुष ऊँचे थे इसलिए उनकी दृष्टि ऊपर की ओर थी और छोटे भाई उनसे पच्चीस धनुष उँचे थे, इसलिए उनकी दृष्टि नीचे की ओर थी ॥

जलयुद्ध -

ततोऽन्योन्यभुजक्षिप्ततरङ्गाघातदुःसहम् ।
जलयुद्धमभूद् रौद्रं सरसस्त्र जितोऽग्रजः ॥ 83 ॥

दृष्टि युद्ध के बाद दोनों भाइयों का तालाब में भयंकर जलयुद्ध हुआ । उस समय दोनों ही भाई एक दूसरे पर अपनी भुजाओं से लहरें उछाल-उछाल कर दु:सह आघात कर रहे थे । परन्तु इस युद्ध में भी बड़े भाई भरत हो हरा दिया ।

मल्लयुद्ध -

वलितास्फोटिताटोपं नानाकरण कौशलम् ।
मल्लयुद्धमभूत्पश्चाद् रङ्गभूमौ चिरं तयोः ॥ 84 ॥

तदनन्तर दोनों का रङ्गभूमि में चिरकाल तक मल्लयुद्ध हुआ । उनका मल्लयुद्ध तालों की फटाटोप से युक्त था तथा नाना प्रकार के पैंतरा बदलने की चतुराई से पूर्ण था ।

दिग्विजयी की हतविजय -

भरतं भुजयन्त्रेण दयावान् भुजविक्रमो ।
निरुद्धयोत्क्षिप्य सन्तस्थे रत्नैशैलमिवामरः ॥ 86 ॥

अन्त में दयावान बाहुबली अपने भुजमन्त्र से भरत को पकड़कर तथा ऊपर की ओर उठाकर इस प्रकार खड़े हो गये मानो कोई देव रत्नों के पर्वत उठाकर खड़ा हो ।

प्रेक्षकैः सुरसंघातैः खेचरैरपि भूचरैः ।
अहो वीर्यमहो धैर्यं साधु साध्विति वर्णितम् ॥ 87 ॥

देखने वाले देवों के समूह विद्याधरों तथा भूमि गोचरी मनुष्यों ने उसी समय जोर से यह शब्द किया कि अहो ! वीर्यम् आश्चर्यकारी शक्ति है, अहो धैर्यम् - आश्चर्यकारी धैर्य है, साधु-साधु ठीक है, ठीक है आदि ।

अमोघ चक्र हुआ मोघचक्र -

साधु संसाध्य मुक्तेन भरतेन रूपाः ततः ।
अपमृत्यु स्मृतं चक्रं सहस्त्रारं स्थितं करे ॥ 88 ॥

तदनन्तर अच्छी तरह जीतकर जब बाहुबली ने भरत को छोड़ा तब उन्होंने क्रोध के कारण अपमृत्यु करने वाले सुदर्शन चक्र का स्मरण किया और स्मरण करते ही हजार आरों को धारण करने वाला सुदर्शन चक्र उनके हाथ में आकर खड़ा हो गया ।

रक्षयं यक्षसहस्त्रेण सहस्त्रकिरण प्रभम् ।
प्रभाम्य चक्रमुन्मुक्तं वधार्थं भ्रातरुन्मुखम् ॥ 89 ॥

एक हजार यक्ष जिसकी रक्षा कर रहे थे तथा जो सूर्य के समान देदीप्यमान प्रभा का धारक था । ऐसे सुदर्शन चक्र को उन्होंने ऊपर की ओर घुमाकर भाई को मारने के लिये छोड़ा ।

चरमोत्तमदेहस्य तस्याशक्तं विनाशने ।
देवताधिष्ठितं चक्रं त्रिः परीत्यागतं पुनः ॥ 90 ॥

परन्तु वह देवाधिष्ठित चक्र चरमोत्तम शरीर के धारक बाहुबली, बड़े भाई को निर्दय देख, हाथों से कान ढककर लक्ष्मी की इस प्रकार निन्दा करने लगे । जिस प्रकार कीचड़ स्वच्छ अनुकूल एवं मिले हुये जल को विपरीत-मलिन कर देती है उसी प्रकार यह लक्ष्मी स्वच्छ अनुकूल और मिले हुए मनुष्यों के चित्त को मलिन कर देती है। अतः इसे धिक्कार हो । जिस प्रकार यन्त्र-मूर्ति (कोल्हू) मधुर एवं चिक्कण स्वभाव वाले तिलहनों के दीर्घ कालिक स्नेह-तेल को हर लेती है तथा अत्यन्त अस्थिर होती है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी मधुर एवं स्नेह पूर्ण स्वभाव वाले मनुष्यों के चिरकालीन स्नेह, प्रिय को नष्ट कर देती है एवं अत्यन्त अस्थिर है अतः इसे धिक्कार हो । जिस प्रकार दृष्टि विष सर्प की दृष्टि नरेन्द्र विष वैद्यों के लिये भी सब ओरसे स्वयं अत्यन्त दुःख से योग्य तथा भय उत्पन्न करने वाली है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी नरेन्द्र राजाओं

के लिये भी सब ओर से अत्यन्त दु:प्रेक्ष्य (दु:ख से देखने योग्य) तथा भय उत्पन्न करने वाली है इसलिये इसे धिक्कार हो । जिस प्रकार अग्नि की शिखा सदा, मूल, मध्य और अन्त में दु:ख कर स्पर्श से सहित है तथा देदीप्यमान होकर भी सबको सन्ताप करने वाली है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी आदि मध्य और अन्त में दु:खकर स्पर्श से सहित है - सब दशाओं में दु:ख देने वाली है -आकुलता की जननी है इसलिये इसे धिक्कार हो । मनुष्य लोक में सुख वही है जो चित्त को सन्तुष्ट करने वाला हो परन्तु बन्धुजनों में विरोध होने पर मनुष्यों को न सुख प्राप्त होता है और न धन ही उनके पास स्थिर रहता है । जिस प्रकार शीत ज्वर से आक्रान्त मनुष्यों के लिये शीतल स्पर्श दु:ख उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार बन्धु जनों के विरूद्ध होने पर भोग भी मनुष्यों के लिये दु:ख उत्पन्न करते हैं ।

युद्ध विजयी बने आत्मविजयी -

इति सञ्चिन्त्य सन्त्यज्य स राज्यं तपसि स्थित: ।
कैलासे प्रतिमायोगं तस्थौ वर्ष सुनिश्चल: ॥ 98 ॥

इस प्रकार विचार कर तथा राज्य का परित्याग कर बाहुबली तप करने लगे। और कैलास पर्वत पर एक वर्ष का प्रतिमा योग लेकर निश्चल खड़े हो गये ।

वाल्मीकरन्ध्रनिर्यातै: फणिभिर्मणिभूषितै: ।
चरणौ रेजतुस्तस्य पुरेव नृपैर्भृतै: ॥ 99 ॥

उनके चरण वामी के बिलों से निकले हुे मणिभूषित सर्पों से इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि पहले मणिभूषित आश्रित राजाओं से सुशोभित होते थे ।

वल्लमेव पुरा वल्ली माधवी कोमलाङ्गिका ।
नि:शेषाङ्ग परिष्वङ्ग चक्रे तस्य मुनेरपि ॥ 100 ॥

जिस प्रकार पहले कोमलाङ्गी वल्लभा उनके समस्त शरीर का आलिङ्गन करती थी उसी प्रकार कोमलाङ्गी माधवी लता उनके मुनि होने पर भी उन बाहुबली के समस्त शरीर का आलिङ्गन कर रही थी ।

लतां व्यपनयन्तीभ्यां खेचरीभ्यां बभौ मुनि: ।
श्याममूर्ति: स्थिरो योगी यथा मरकता चल: ॥ 101 ॥

दो विद्याधर परियाँ उनके शरीर पर लिपटी हुई लता को दूर करती रहती थी जिससे श्याम मूर्ति के धारक एवं स्थिर खड़े हुए योगिराज बाहुबली मरकत मणि के

पर्वत के समान सुशोभित हो रहे थे ।

कषायान्तमसौ कृत्वा भरतेन कृतानति: ।
केवल ज्ञान मुत्पाद्य पारिषध प्रभोरभूत् ॥ 102 ॥

तदनन्तर भरत ने आकर जिन्हें नमस्कार किया था ऐसे बाहुबली मुनिराज कषायों का अन्त कर तथा केवल ज्ञान उत्पन्न कर भगवान वृषभदेव के सभासद् हो गये - उनके समवशरण में पहुँच गये ।

कन्नड़ साहित्य के महाकवि रत्नाकर ने इस भरत बाहुबली के युद्ध, वैराग्यादि का वर्णन एक असाधारण पद्धति से निम्न प्रकार किया है । भरतदेश और बाहुबली युद्ध के सम्मुख हैं, परन्तु उन दोनों के मंत्री, मित्र व प्रमुख राजाओं ने आपस में मिलकर प्रसंग को टालने के सम्बन्ध में परामर्श किया । वे विचार करने लगे कि बाहुबली को बहुत से लोगों ने समझाया ,तथापि उसका कोई उपयोग नहीं हुआ । इसलिए अब युद्ध तो होगा ही, अब कौन क्या कर सकते हैं ? जब चक्रवर्ती और कामदेव युद्ध के लिये खड़े हैं तो सामान्य युद्ध नहीं होगा । एक दूसरे के प्रति झुक नहीं सकते। यह कामदेव दूसरों को भले ही जीत सकता है परन्तु आत्म निरीक्षण करने वाले भरतदेश को कभी जीत नहीं सकता है । हम इस बात को अच्छी तरह जानते हैं । अच्छा ! कुसुमास्त्र से युद्ध होगा या खड़ग से होगा ? बाहुबलि ने क्या विचार किया है ? बाहुबलि के मंत्री -मित्रों ने कहा कि कुसुमास्त्र को परमात्मयोग से हरायेंगे इस विचार से लोहास्त्र से ही युद्ध करने का निश्चय किया है । तब तो दोनों वज्रकाय हैं, उनको तो कुछ भी कष्ट नहीं होगा । परन्तु दोनों पर्वतों के घर्षण से जिस प्रकार बीच के पदार्थ चूर्णित होते हैं, उसी प्रकार सर्व सेना की हालत होगी । हाथों में खड्ग लेकर युद्ध करने की जरूरत नहीं, व्यर्थ ही निपराध सेना की हत्या होगी । इसलिये दोनों को धर्मयुद्ध करने के लिए प्रार्थना करें । सब लोगों को यह बात पसन्द आई। सम्राट के पास सब पहुँचे व प्रार्थना की कि स्वामिन् ! युवराज ने लोहास्त्र से युद्ध करने की ठानी है, पुष्प बाण से वह काम नहीं लेगा । अब तो निश्चय समझिये कि यह सेना पुर प्रवेश नहीं कर सकेगी, अपितु यमपुर में प्रवेश करेगी । आप दोनों पराक्रमी हैं । जब आप लोग लोहास्त्र को लेकर युद्ध करेंगे तो प्रलयकाल ही आ जायेगा । अब हमारा संरक्षण नहीं हो सकेगा, यह निश्चय है । आप दोनों वज्रदेही जिस समय युद्धरंग में प्रविष्ट होंगे तो कांच की चूड़ियों की दूकान में दो मदोन्मत्त हाथियों के प्रवेश के समान हो जायगा । "तब आप लोग क्या कहते हैं " बीच में

भरतेश्वर ने पूछा । उत्तर में उन लोगों ने कहा कि हमने एक उपाय सोचा है, परन्तु कहने के लिये भय मालूम पड़ता है । "डरने की कोई जरूरत नहीं, आप लोग बोलो ?" भरतेश्वर ने कहा । स्वामिन् ! धर्मयुद्ध की स्वीकारता दीजिये । दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध आप लोग दोनों करें । इसके सिवाय कोई युद्ध नहीं करना चाहिये । यही हम सबकी अभिलाषा है । उत्तर में भरतेश्वर ने कहा कि आप लोग मुझे कुछ भी नहीं पूछें । बाहुबलि जैसा कहता हो वैसा ही सुनने के लिये मैं तैयार हूँ । उससे जाकर पूछें । उसकी इच्छानुसार व्यवस्था करें ।

सब लोग वहाँ से संतोष के साथ बाहुबलि के पास गये । हाथ जोड़कर खड़े हुये । बाहुबलि ने कहा कि क्या बात है ? उत्तर में कहा कि स्वामिन् ! आप से कुछ प्रार्थना करना चाहते हैं, परन्तु भय मालूम होता है । तब बाहुबलि ने कहा कि मैं समझ गया । आप लोग युद्ध रुकवाना चाहते हैं । और क्या ? उत्तर में उन लोगों ने कहा कि स्वामिन् ! युद्ध तो होना चाहिये बाहुबलि ने कहा कि अच्छा तो आगे बोलो, डरो मत । तब उन मंत्री मित्रों ने प्रार्थना की कि स्वामिन् ! युद्ध होने दो । परन्तु खड्ग युद्ध की आवश्यकता नहीं । उससे भी बड़े मृदुल युद्ध को आप दोनों अपने भुजबल से करें, सेना के नाश की जरूरत नहीं । बीच में ही बात काटकर बाहुबलि ने कहा कि मैं यह सोच ही रहा था कि सामने की सेना अधिक संख्या में है । मेरी सेना बहुत थोड़ी है । ऐसी अवस्था में आप लोगों ने जो मार्ग निकाला सो यह मेरा पुण्य है चलो अच्छा हुआ आगे बोलो ।

स्वामिन् ! पहला दृष्टि युद्ध होगा । उसमें एक दूसरे के मुख को अनिमिष नेत्र से देखना चाहिये । जिनके नेत्र पहले बन्द हो जायेंगे उस समय उसकी हार मानी जायेगी ।

दूसरा युद्ध , जल युद्ध होगा । एक दूसरे हाथ से एक दूसरे के मुख पर पानी फेंके । जो मुख को हटायेंगे वे हार गये ऐसा समझना चाहिए । इतने से युद्ध की समाप्ति नहीं होगी ।

तीसरा युद्ध मल्ल युद्ध होगा । इस युद्ध में आपस में कुस्ती होगी । किसी को एक हाथ से उठा लेंगे तो फिर युद्ध बन्द कर देना चाहिये । फिर कोई युद्ध नहीं होना चाहिये । स्वामिन ! आप पुष्प वाण से समस्त लोक को वश में करते हैं, ऐसी अवस्था में आपने कठिन खड्ग लेकर युद्ध किया तो लोक इसे अच्छी नजर से नहीं देख सकता। इसलिये हम लोगों ने इस मृदु युद्ध का विचार किया है । आपका बाण,

धनुष्य कोमल है, आप कोमल हैं, आपकी सेना कोमल है फिर पत्थर के समान कठिनता की क्या आवश्यकता है ? इसीलिये हम लोगों ने यह कोमल विचार किया है । बाहुबलि ने उत्तर में कहा कि मैं समझ गया कि आप लोग मेरे हितैषी हैं, जाइये मुझे मंजूर है । शीघ्र युद्ध रंग में भरतेश्वर को उतरने के लिये कहियेगा ।

बहुत संतोष के साथ सब वहाँ से सम्राट के पास गए व सर्व वृत्तांत निवेदन किया । साथ में यह भी प्रार्थना की कि तीन धर्मयुद्ध के सिवाय आगे कोई भी युद्ध नहीं हो सकेगा । इस बात का वचन लिया गया । एवं यह भी निर्णय हुआ कि यदि कामदेव हार गया तो वह भरतेश के चरणों में नमस्कार करें । यदि भरतेश की हार हुई तो बाहुबलि भरतेश को नमस्कार न कर वैसा ही पौदनपुर में जाकर राज्य करें। सेनास्थल में ढिंढोरा पीटा गया कि युद्ध दोनों राजाओं में वैयक्तिक होगा । युद्ध में सेना भाग नहीं लेगी ।

सब लोग युद्ध को देखने के लिये खड़े हैं - आकाशप्रदेश में व्यन्तर, देवगण, विद्याधर वगैरह खड़े हैं कामदेव के पक्ष के राजा- महाराजा कवि विद्वान, ब्राह्मण वगैरह सब एक तरफ खड़े हैं । मन्त्री मित्रों ने जाकर प्रार्थना की, कि स्वामिन ! युद्ध की तैयारी हो चुकी है, अब चलियेगा । बाहुबलि उस समय हाथी से उतरकर नीचे आया, वह दृश्य सूचित कर रहा था कि शायद बाहुबलि यह कह रहा है कि हाथी घोड़ा आदि सम्पत्ति की अब मुझे जरूरत नहीं, मैं दीक्षा लेने के लिये जाता हूँ । गर्वगिरी से उतरने के समान उस गजरूपी पर्वत से उतरकर वह कामदेव युद्धभूमि के बीच में खड़ा हुआ, मालूम हो रहा था कि एक पर्वत ही खड़ा है । छत्र, चामर आदि बाह्य वैभव व अपने शरीर के भी कुछ वस्त्र आभूषणों को उतारकर यत्र तत्र होकर खड़ा हुआ । उस समय वह बहुत ही सुन्दर मालूम हो रहा था ।

भरतेश्वर से आकर मंत्री-मित्रों ने प्रार्थना की, कि स्वामिन ! बाहुबलि आकर रणांगण में खड़े हैं । आगे क्या होना चाहिये , आज्ञा दीजिये । उत्तर में भरतेश्वर ने कहा, मैं ही आकर सब कहूँगा । आप लोग निश्चिन्त रहें । स्वत: मौन धारण कर भरतेश्वर विचार करने लगे कि इसके साथ धर्म युद्ध भी क्यों करूँ । इसके हाथ-पैर बाँधकर छोटी माँ के पास रवाना कर देता हूँ । (पुन: विचार कर) नहीं ! नहीं! ऐसा करना उचित नहीं होगा ।

इतनी सेना के सामने अपने अपमान का अनुभव कर फिर वह घर में नहीं ठहरेगा । दीक्षा लेकर चला जायेगा, असका मुझे भय है । कोमल युद्धों में भी वह

हार जायेगा तो वह दीक्षा लेकर चला जायेगा । मुझे पहले के सहोदरों के समान इसे भी खोना पड़ेगा । इसीलिये कोई न कोई उपाय से काम लेना चाहिये । अपने सामर्थ्य को दिखाने के लिए आज तक मेरे सामने कोई भी खड़े नहीं हुए परन्तु मेरा भाई ही खड़ा हुआ, ऐसी अवस्था में इसे मारना भी उचित नहीं । अहितों को जीतना भी उचित नहीं है । साहसियों को कष्ट देना चाहिए, परन्तु अपने कुटुम्बियों के साथ द्रोह करना ठीक नहीं है । इस बाहुबलि की मूर्खता के लिए मैं क्या करूँ ? इस प्रकार तरह-तरह से भरतेश्वर विचार कर रहे थे । परमात्मन् ! इसके लिए योग्य उपाय तुम ही कर सकते हो । एक दम हँसकर गुरु की कृपा है, समझ गया । ठीक है चलो।

उसी समय पल्लकी लाने की आज्ञा हुई, प्रस्थान भेरी बजाई गई, पल्लकी पर चढ़कर भरतेश्वर रवाना हुए । भरतेश्वर ने उस समय युद्ध के लिए उपर्युक्त वेशभूषा को धारण नहीं किया था । मालूम हो रहा था कि उस समय वे विवाह के लिए जा रहे हैं । मंत्री मित्रों ने प्रार्थना की कि हे स्वामिन् ! इस प्रकार जाना उचित नहीं है । बाहुबलि तो युद्ध के लिए लंगोटी कसकर खड़ा है, परन्तु आप तो इस प्रकार जा रहे हैं । हम जानते हैं कि आप में शक्ति है । परन्तु शक्ति होने पर भी युद्ध के समय में युक्ति को नहीं भूलना चाहिए । मोर को पकड़ना हो तो शेर को पकड़ने की तैयारी करनी चाहिए । तभी दूसरों पर प्रभाव पड़ता है । तब उत्तर में भरतेश्वर ने कहा कि आप लोग बिल्कुल ठीक कहते हैं । परन्तु मुझे आज परमात्मा ने दूसरी ही बुद्धि दी है । इसलिए मैं इस प्रकार जा रहा हूँ । आप लोग कोई चिन्ता न करें। मैं किस उपाय से आज उसे जीतता हूँ, देखियेगा ।

मंत्री-मित्रों ने कहा कि , हम अच्छी तरह जानते हैं कि आप जीतेगें ही, तथापि हमने इतनी ही प्रार्थना की, कि युद्ध सन्नद्ध होकर जाना अच्छा है । अब आपने जो विचार किया है वह ठीक है । इस प्रकार बातचीत करते हुए आगे बढ़ रहे थे । स्तुति पाठकगण जगदेकमल्ल, जाडयोध्दूत, मनुवंश,गगनमार्तण्ड, उद्दण्ड, कामदेवाग्रज, विक्रान्तनाथ, विश्वभरा भूषणचक्रेश, चक्रवाक्ध्वजाग्रज आपकी जय हो इत्यादि प्रकार की स्तुति कर रहे थे । वे बाहुबलि के सामने आये । दोनों दीर्घदेही हैं । मालूम होता था कि पर्वत ही आकर खड़े हों । भरतेश्वर का देह 500 धनुष प्रमाण है । परन्तु बाहुबलि का 525 धनुष प्रमाण है । देह प्रमाण ही सूचित कर रहा था कि यह बड़े भाई का उल्लंघन कर जाने वाला है । कलियुग के लोगों के हाथ से पाँच सौ गज प्रमाण वह शरीर था । वैसे तो क्रम से सबका शरीर पाँच सौ धनुष प्रमाण है ।

परन्तु बाहुबलि का शरीर प्रमाण 25 धनुष प्रमाण अधिक था, यह आश्चर्य की बात है । उस समय चक्रवर्ती का सौन्दर्य व कामदेव का सौन्दर्य लोग बारीकी से देख रहे थे । सबके मुख से यही उद्‌गार निकलता था कि, भरतेश से बाहुबलि सुन्दर है । बाहुबलि से भरतेश्वर सुन्दर है । सौन्दर्य में कामदेव प्रसिद्ध है, तब चक्रवर्ती कामदेव के समान सुन्दर नहीं होते हैं । परन्तु आत्मभावक भरतेश मात्र कामदेव से भी बढ़कर सुन्दर थे क्योंकि ध्यान की सामर्थ्य सामान्य नहीं हुआ करती है । इस प्रकार दोनों अतुल शक्ति के धारक वहाँ पर खड़े हैं । सेनागण उनके सौन्दर्य को देख रहे थे । और देखें, अब शक्ति में कौन जीतेंगे , कौन हारेंगे, देखना चाहिए । इस परीक्षा में सब लोग खड़े थे ।

गाजे-बाजे का शब्द अन्त हुआ । भरतेश्वर ने कहा कि, युद्ध की भेरी अभी बजाने की जरूरत नहीं । मैं अपने भाई से दो-चार बातें पहले कर लूँगा । उसे वैसा ही वक्र रूप से खड़े होकर ही सुनने दो, मैं गंभीर अर्थ को ही कहूँगा । तब मंत्री -मित्रों ने कहा कि बहुत अच्छा ! जरूर कहना चाहिये । तब सम्राट ने निम्नलिखित प्रकार बाहुबलि से कहा --

भाई बाहुबलि ! आज तुम में और मुझ में दुर्भाव से युद्ध हो रहा है, इसके लिए कारण क्या है ? क्योंकि निष्कारण कोई राजा आपस में युद्ध नहीं किया करते हैं । तुम्हारी कोई सम्पत्ति मैंने छीन ली है, मेरी सम्पत्ति तुमने नहीं छीनी है । पहले से पिताजी ने जिसे राजा व युवराज बनाया है, उसी प्रकार हम रहते हैं । अच्छा ! कोई बात नहीं । भाई-भाइयों में भी द्वेष होता है, परन्तु उसके लिए भई कोई कारण होता है । क्या तुमसे कर वसूल करने के लिए मैंने अपने दूतों को तुम्हारे पास भेजा है ? तुम्हारे नगर में मेरे मनुष्य आ सकते हैं । तुम्हारी प्रजा को मेरे नगर में आने पर अन्य जनों के समान कभी भावना की थी ? प्रजा परिवारों में इस प्रकार भिन्न विचार क्यों ? मैंने बोलते हुए कभी तुम्हारे लिए अल्प शब्दों का प्रयोग किया ? मेरी प्रजा में किसी ने उस प्रकार का व्यवहार किया ? कभी नहीं । केवल मेरे भाई को देखने की इच्छा से उसे बुलाया तो इतना क्रोध क्यों ? तुम मेरे लिए क्या शत्रु हो ? मैं क्या तुम्हारे लिए शत्रु हूँ ? हम दोनों आदिप्रभु के पुत्र होकर इस प्रकार विचार करें तो यह आगे सब सामान्य लोगों के लिए द्रोह शासन को लिख देने के समान हो जायेगा ।

कदाचित् तुम मन में कहोगे, कि यह युद्ध से डरकर अब यहाँ बातें करने लगा

है । परन्तु ऐसी बात नहीं है । युद्ध तो करूँगा ही । पहले अपने मन की बात कहकर दोष को टाल रहा हूँ । दूसरे कोई मेरे सामने युद्ध के लिए खड़े होते तो उनको लात मारकर भगाता । परन्तु भाई ! सोचो, सहोदरों के युद्ध को लोग पसन्द नहीं करेंगे मैं तुमसे थोड़ा बड़ा हूँ, इसीलिए मैंने तुमको अपनी सेना की तरफ बुलाया, तुम मुझसे बड़े होते तो मैं तुम्हारे पास आता । बड़े भाई के पास छोटे भाई का जाना लोक की रीति है । इसमें भाई ! तुम्हारा अपमान क्या है ? तुम और मैं दोनों खिलाड़ी हैं । ये सब सेनागण, राजा, मंत्री ,मित्र आदि सबके सब तमाशा देखने वाले दर्शक हैं ।

लोक में राजाओं को लड़ाकर हम लोगों को तमाशा देखना चाहिये । परन्तु हम ही तमाशा दूसरों को दिखाते हैं । मुझसे तुम जीतोगे तो क्या मुझे यश मिल सकेगा ? पन्नगनरसुरलोक के उत्तम पुरुष अपने व्यवहार को देखकर थू कहे बिना नहीं रह सकते । विशेष क्या ? तुम युद्ध के लिए आये हो न ? युद्ध में जय होने की अभिलाषा सबकी रहती है । सामान्य लोगों के समान लड़ने की क्या जरूरत है ? तुम जीत गये, मैं हार गया जाओ ।

भरतेश्वर के वचन को सुनकर मंत्री, मित्र,राजा,महाराज आदियों ने कान में उंगली देकर कहा कि, यह क्या कहते हैं ? आपकी कभी हार है ? भरतेश्वर ने उत्तर में कहा कि आप लोग क्या बोलते हैं ! कामदेव से कौन नहीं हारते हैं ! क्या हमने स्त्रियों को छोड़ा है ? मेरे भाई की जो जीत है, वह मेरी ही जीत है । दूसरा कोई सामने आता तो बाएँ पैर से उसे लात देता, आप लोग सब मेरे अन्तरंग को जानते ही हैं । बाहुबली की ओर मुड़कर फिर कहा कि भाई ! औपचारिकता के लिये तुम्हारी जीत है ऐसा मैं नहीं कह रहा हूँ । अच्छी तरह सुनो, तुम्हारी सामर्थ्य को मैं अच्छी तरह जानता हूँ । सर्व सेना सुने, उस तरह मैं कहता हूँ , सुनो --

दृष्टि युद्ध में तुम्हारी जीत है, क्योंकि तुम मुझसे 25 धनुष्य प्रमाण अधिक हो इसीलिये तुम मुझे सरलता से देख सकते हो, परन्तु मुझे ऊर्ध्वदृष्टि कर तुम्हें देखना पड़ेगा, इसीलिये मुझे कष्ट होगा । मेरी आँखें दुखेंगी ।

भरतेश्वर के इस कथन को सुनकर मंत्री, मित्रों ने मन में सोचा कि सूर्यबिम्ब के अन्दर स्थित जिन प्रतिमाओं के दर्शन को अपने महल से बैठे-बैठे जो देखा करता है, उस समय तो उसकी आँखें नहीं दुखती हैं, तो 25 धनुष प्रमाण की क्या कीमत है ? यह केवल भाई को समझाने के लिये कह रहा है । सूर्यकिरण तो आँखों को चुभती हैं, तथापि आँखों को वे बन्द नहीं करते । ऐसी अवस्था में अत्यन्त सुन्दर

शरीर को देखकर आँखों को किस प्रकार कष्ट हो सकता है ? यह भाई को खुश करने की बात है ।

भरतेश्वर ने कहा कि भाई ! जल युद्ध में भी तुम्हारी जीत है । क्योंकि तुम ऊँचे हो, मैं तुम्हारी छाती तक पानी फेंक सकता हूँ , मुझे तुम डुबा सकते हो ऐसी अवस्था में मेरी हार उसमें भी हो ही जायेगी । समझे ?

मंत्री -मित्रों ने विचार किया कि भरतेश्वर यह क्या बोल रहे हैं ? अनेक इच्छित रूपों को धारण कर आकाश पर भी पानी फेंकने की शक्ति भरतेश्वर में है। २५ धनुष की बात ही क्या ? यह केवल औपचारिकता के लिये कह रहे हैं ।

भरतेश्वर ने बाहुबलि से पुन: कहा कि भाई ! मल्ल युद्ध की तो जरूरत ही क्या है ? पिताजी ने तुम्हारा नाम ही भुजबली रखा है । वह असत्य किस प्रकार हो सकता है ? भुजबल में तुम प्रबल हो, मुझे सहज उठा सकते हो । पिताजी ने मेरा नाम भरतेश्वर रखा है, मैं भरत भूमि का अधिपति हुआ हूँ । तुम्हारा नाम भुबली रखा है, जो भुजबल से मुझे तुम उठाओगे ही ।

मन्त्री-मित्रों ने विचार किया कि भरतेश्वर भाई को समझाने को कह रहे हैं। भुजबली का अर्थ क्या चक्रवर्ती को जीतने वाला है ? कदापि नहीं । केवल सुजान चिंतामणि सम्राट अपने सहोदर को समझाने के लिये कह रहे हैं । जैसे वीर, सुवीर, अनन्तवीर्य, मेरू, सुमेरू, महाबाहु आदि अनेक नामों से अलंकृत आदि प्रभु के पुत्र हैं । क्या सबका अर्थ भरतेश्वर को जीतने वाला है ? छोटी-सी उंगली से परसों सारी सेना को जिसने उठाया, बड़े-बड़े पर्वतों को सूखे पत्ते के समान जो उठा सकता है, उसके लिये इस कामदेव को उठाने की क्या बड़ी बात है ? सारी सेना ने मिलकर इनकी छोटी-सी उंगली को सीधी करने के लिये अपनी सारी शक्ति कोलगाकर खींचा, परन्तु ये तो अपने सिंहासन से थोड़ा सा हिले तक भी नहीं । सरकने की बात तो दूर । ऐसी अवस्था में क्या वह कामदेव को नहीं उठा सकते हैं ? यह कैसी बात ? 96 हजार स्त्रियों को तृप्त करने की सामर्थ्य है । कामदेव को केवल आठ हजार स्त्रियों को तृप्त करने की सामर्थ्य है । इसी से स्पष्ट है, तथापि छोटे भाई को प्रसन्न करने के लिये सम्राट इस प्रकार कह रहे हैं । विशेष क्या ? भरतेश्वर जो बत्तीस ग्रास आहार लेते हैं, उससे एक ग्रास प्रमाण पट्टरानी लेती हैं, पट्टरानी जो एक ग्रास लेती है उसे सारी सेना मिलकर लेवें तो भी पचा नहीं सकती है । फिर यह कामदेव उसे क्या ले सकता है ? वह आहार पर्वत प्रमाण नहीं है, दिव्यान्न है, उसमें दिव्य शक्ति है।

ऐसी अवस्था में भी उपर्युक्त बातें सम्राट ने उसे समझाने के लिए कहा।

इस प्रकार सर्व सेना में सब लोग आपस में बातचीत कर रहे थे । भरतेश्वर ने कहा कि भाई ! जब अपने मुख से मैंने कहा कि मैं हार गया, तुम जीत गये, फिर अब क्रोध की क्या आवश्यकता है ? भाई । हृदय को शान्त करो ।

इस प्रकार भरतेश्वर ने जब अपनी हार बताई, तब दशों दिशाओं में एकदम अन्धकार छा गया । आग के बिना धूम निकला । क्यों नहीं ? मनुरत्न सम्राट को जब दु:ख हुआ, ऐसा क्यों नहीं होगा ? सेना घबरा गई । बाहुबलि ने मन में विचार किया कि सचमुच में मैंने यह अच्छा विचार नहीं किया है, भाई के प्रति इस प्रकार द्रोहविचार नहीं करना चाहिये था । बाहुबलि ने अभीतक सन्मुख होकर भरतेश्वर को नहीं देखा था । भरतेश्वर ने पुन: बाहुबलि को प्रसन्न करने के लिए कहा --

भाई ! सुनो, मैंने इस चक्ररत्न की अभिलाषा नहीं की थी, आयुधशाला में वह अपने आप उत्पन्न होकर उसने मुझे सारे देश में भ्रमण कराया व आप लोगों के हृदय को दुखाया । मैं इन सब संपत्तियों को पुण्य कर्मफल जानकर उदासीन भाव से देख रहा हूँ, मुझे बिल्कुल लोभ नहीं । तुम इनको स्वीकार करो । तुम ही राजा हो । तुम राजा होकर अपने राज्य में रहो , मैं तुम्हारे अधीनस्थ राजा होकर तुम्हारे लिए दिग्विजय के लिए गया और समस्त षट्खण्ड को वश में करके आया हूँ, लो यह सब राज्य, सेना वगैरह तुम्हारे ही हैं । ये सब राजा तुम्हारे हैं । तुम्हारा मैं भाई हूँ इसका विचार नहीं, परन्तु तुम मेरे भाई हो इसका विचार मुझे है, इसलिए भाई के भाग्य को आँखभर के देखकर मैं संतुष्ट होऊँगा ।

इस राज्यपद को स्वीकार करो । अयोध्या में तुम सुख से राज्य करो । मुझे एक छोटा सा राज्य देकर सुख से अलग रखो । यह मैं दु:ख के साथ नहीं बोल रहा हूँ, पुरुपरमेष के चरण की शपथ है । मुझे अगणित सेवकों की जरूरत नहीं । मेरे काम के योग्य परिवार व सेवकों की व्यवस्था कर मुझे अलग रखो । तुम्हारे मन को प्रसन्न करने के लिये यह मैं नहीं बोल रहा हूँ, इसके दिये निरंजनसिद्ध ही साक्षी है। कंजास्त्र । भाई, इससे अधिक बोलने की मेरी इच्छा नहीं । स्वीकार करो इस राज्य को ! 'बाहुबलि ! क्रोध परित्याग करो ।' भरतेश्वर भोई को शान्त करने के लिए कह रहे थे ।

बाहुबलि भी मन में ही लज्जित होने लगा । अब सीधा खड़े होकरभरतेश्वर की ओर देखने के लिए भी उसे संकोच हो रहा था । पुन: भरतेश्वर ने उस चक्ररत्न

को बुलाकर कहा कि चक्ररत्न! जाओ, अब तुम्हारी मुझे जरूरत नहीं, तुम्हारा अधिपति यह बाहुबलि है, उसके पास जाओ । इस प्रकार भरतेश्वर के कहने पर भी वह आगे नहीं बढ़ा, क्योंकि उसे धारण करने का पुण्य बाहुबलि को नहीं था । भरतेश्वर को छोड़कर जाने के लिए भरतेश्वर भी हीन-पुण्य नहीं थे । अतएव बुलाते ही भरतेश्वर के सामने आकर खड़ा हुआ । आगे नहीं गया । भरतेश्वर को पुन: सहन नहीं हुआ । फिर भी क्रोध से कहने लगे कि अरे चक्रपिशाच ! मैं अपने भाई के पास जाने के लिए बोलता हूँ तो भी नहीं जाता है, यह बड़े आश्चर्य की बात है । जाओ, मेरे पास मत रहो, इस प्रकार कहते हुए आगे धक्का देकर आगे सरकाया । तथापि भरतेश्वर का पुण्य तो क्षीण नहीं हुआ था, और चक्ररत्न को पाने योग्य सातिशय पुण्य बाहुबलि ने भी नहीं पाया । अतएव वह आगे नहीं बढ़ा, परन्तु सम्राट ने जबर्दस्ती से उसे धक्का देकर आगे सरकाया, इसलिये सरककर थोड़ी दूर पर बाहुबलि के पास जाकर खड़ा हुआ । चक्ररत्न सदृश पुण्यपदार्थ का अपमान हुआ । भूकम्प हुआ, धूमकेतु अकाल में दृष्टिगोचर हुआ । सूर्यबिम्ब भी मंदकांति से संयुक्त हुआ । आठों दिशाओं में दुखपूर्ण शब्द हुआ । सातिशय पुण्यशाली ने अल्पपुण्यशाली की सेवा के लिये चक्र को भेजा, इसलिये यह सब हुआ । महानपुण्यशाली सम्राट के पुण्योदय से षट्खंड वश में हुआ । यदि उस पूर्वपुण्योपार्जित साम्राज्य को जब हीन पुण्य वाले को दिया जावे तो सत्पथ का विनाश होकर कुपथ की उत्पत्ति होती है । फिर इस प्रकार का महोत्पात हो तो आश्चर्य की क्या बात है ? अनहोनी कार्य को होने योग्य समझकर महापुरुष प्रवृत्ति करें तो लोक में अद्‌भुत बातें क्यों नहीं होंगी ? बाहुबलि भी मन में विचार कर रहे थे कि छी ! मैंने बुरा किया ।

गरुड़मन्त्र से विष जिस प्रकार उतरता है, उसी प्रकार भरतेश्वर के मृदुवचनों को सुनकर बाहुबलि का क्रोध-विष उतर गया । चित्त शान्त हुआ । हां! भाई के साथ विरोध कर बड़े भारी अपयश को प्राप्त किया । इस प्रकार विचार करते हुए बाहुबलि मुख सीधा करके खड़े हुए । तथापि भाई की तरफ देखने के लिये संकोच कर रहे थे। नीचे मुख करके खड़ा है । नाक पर उंगली रखकर विचार करने लगा कि मैं बहुत ही उपहास्य का पात्र बना । मैंने बड़े भाई के साथ बहुत-बहुत द्रोह किया बुरा किया ।

जिस समय बाहुबलि सीधा होकर खड़ा हुआ तब तक लोगों को तो इतना संतोष हुआ कि शायद अपने ऊपर का एक भार ही कम हुआ । उनको निश्चय हुआ कि अब युद्ध नहीं होगा । दोनों पिताओं के युद्ध को देखने का पाप हमें प्राप्त हुआहै,

इस परिताप से खड़े हुए अर्ककीर्ति, महाबलकुमार आदि के मुख भी कान्तिमान् हुए। मल्लयुद्ध के सिवाय इन लोगों का गर्वगलित नहीं होगा, इस बात की प्रतिक्षा करने वाले मंत्री, मित्रों को भी केवल बातों में ही जीतने वाले चक्रवर्ती के चातुर्य को देखकर आश्चर्य हुआ । उन लोगों ने भी सम्राट की बुद्धिमता की प्रशंसा की ।

बाहुबलि की उग्रता कहाँ ? शान्ति से आकर मृदुवचनों से उसके क्रोध को शान्त करने की भरतेश की बुद्धिमत्ता कहाँ ? किसी भी तरह भरत की बराबरी कोई भी नहीं कर सकते । बोलने की गम्भीरता, उपदेश देने की कला, सहोदरप्रेम और वात्सल्यपूर्ण बातों से जीतने का विवेक सचमुच में असदृश है । सारी सेना ने मुक्तकंठ से भरतेश्वर की प्रशंसा की।

युद्धभेरी बजाने के लिए सन्नद होकर भेरीकार खड़े थे । वे अलग हट गये। एक आसन वहाँ पर रखा गया । भरतेश्वर उस पर विराजमान हुए । मोती का छत्र रखा गया । बाहुबलि धूप में खड़ा है, यह भरतेश्वर को सहन नहीं हुआ, भरतेश्वर ने आज्ञा की कि उसके ऊपर एक छत्र धरा जाये, उसी प्रकार सेवकों ने किया । भरतेश्वर का भ्रातृप्रेम सचमुच में अद्‌भुत है । उस समय महाबलकुमार ने रत्नबलराज को इशारे से बुलाया । रत्नबलराज भी दौड़कर बड़े भाई के पास आ गया । रत्नबलकुमार से भरतेश्वर के चरणों में नमस्कार कराकर महाबलराज ने निवेदन किया कि स्वामिन् ! यह मेरा छोटा भाई है । भरतेश्वर ने उसे बड़े प्रेम से लेकर गोद में रख लिया । उसे अनेक प्रकार के उत्तम पदार्थ देकर कहा कि बेटा ! जब तक यह कार्य पूर्ण न हो तब तक तुम अपने भाइयों के पास रहो ।

नाक के अग्रभाग पर उंगली को रखकर बाहुबलि अपनी दुर्वासना व दुश्चरित्र पर मन-मन में ही खिन्न होने लगा क्योंकि वह आसन्न मोक्षक है । बाहुबलि मन में पश्चात्ताप करते हुये विचार करने लगा कि हाय ! मैं पापी हूँ । बड़े भाई के साथ विरोध कर कुल के लिए लोकापवाद को उपस्थित किया । सचमुच में कषाय बहुत बुरी चीज है, वह सबको बिगाड़ देती है। क्या मेरे भाई मेरे लिए शत्रु है ? हाय! दुष्ट कर्म ने मेरे साथ धोका किया । उग्रभाव ने मेरे साथ खड़े होकर इस प्रकार लोकापवाद के लिए पात्र बनाया । मेरे दुराग्रह के लिये धिक्कार हो । दिव्य आत्मानुभवी मेरे भाई के भ्रातृवात्सल्य को जरा देखो, व्यर्थ ही मैंने अन्यथा विचार किया । हाँ! मैंने लोक के लिए असम्मत कार्य का विचार किया । मुझे समझ में नहीं आता कि पिताजी ने मेरा नाम उन्मत्त न रखकर मन्मथ क्यो रक्खा ? पितार्जी ने सोच-समझकर मेरा नाम मन्मथ रखा है । (पृथु (स्थूल) कषाय को मैंने धारण किया है । उससे

मेरे मन में विशिष्ट व्यथा हुई । उस दुःखपूर्ण मनको मैंने इस समय मंथन किया है। अतएव मुझे मन्मथ के नाम से कहने में कोई हर्ज नहीं है। देखो, कर्म की गति विचित्र है । कहाँ तो मैं बहुत उग्रता से युद्ध के लिए तैयारी से आया और कहाँ युद्धरंग में आकर खड़ा हुआ । और भाई के मृदु वचनों को सुनकर क्षण में शांत हुआ । सचमुच में कर्म की दशा क्षण-क्षण में बदलती है । मन्त्री व मित्रों ने कितने विनय व अनुनय से मुझे समझाया, मातुश्री ने कितने प्रेम से उपदेश दिया । मेरी समस्त रानियों ने कितने प्रेम से कहा, परन्तु किसी का न सुनकर सबको फंसाकर चला आया । जिन! जिन मैं बहुत बड़ा दुष्ट हूँ । यह भी जाने दो ! मेरे भाई के पुत्र मुझे देखने के लिये आये। तब भी मेरा हृदय नहीं पिघला । मैंने उनका तिरस्कार किया, सचमुच में मैं मदन नहीं हूँ, मेरा हृदय पत्थर का है । अर्हन् ! मेरे लिए धिक्कार हो। सब लोगों को नीति के उपदेश देने वाले तुम्हारे भाई हैं, अग्रज हैं, इत्यादि शब्द से भरतेश्वर को कहा, परन्तु मैंने तो वह है, यह है, राजा है, चक्रवर्ती है आदि व्यंग शब्दों से ही उसका संकेत किया, भाई के नाम से नहीं कहा, कितना कठोर हृदय है मेरा । लोक के सामने बड़े भाई ने अपनी हार बताई । चक्ररत्न को धक्का दिया गया । त्रिलोक में विशिष्ट चक्ररत्न का अपमान हुआ । यह सब मेरे कारण से हुआ, सचमुच में यह मेरे लिएं लज्जा की बात है । अपयशरूपी कलंक मुझे लग गया । अब इस कलंक को घर पर रहकर धो नहीं सकता । तपश्चर्या से ही इसे धोना चाहिए, इस प्रकार बाहुबलि ने विचार किया । मोहनीय कर्म का उपशम होने पर इस प्रकार का परिणाम हो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?

पुनः विचार करने लगा कि पत्थर के समान मैं भाई के सामने खड़े होकर पुनः राज्य करूँ तो, दूसरे राजाओं के ऊपर क्या प्रभाव पड़ेगा और वे क्या विचार करेंगे ? इस सभा में जिन राजाओं ने मुझे देखा है वे मुझे बहुत ही तिरस्कृत दृष्टि से देखेंगे।

इसलिए अब दीक्षा के लिए जाना ही अच्छा है । बाहुबली संसार, शरीर, भोगों से विरक्त होकर तथा भरतादि से अनुमति लेकर कैलाश पर्वत पर पहुँचे व भगवान ऋषभदेव के दर्शन कर उनसे योगीरूप को धारण कर लिया । (भरतेश वैभव. भा.II)

भरत बने चक्रवर्ती -

चर्तुदशमहारत्नैर्निधिभिवभिर्नयुतः ।
निःसपत्नं तवश्चक्री बुभोजवसुधांकृती ॥ 103 ॥

तदनन्तर चौदह महारत्नों और नौ निधियों से युक्त अतिशय बुद्धिमान चक्रवर्ती भरत पृथ्वी का निष्कण्टक उपभोग करने लगे ।

3 भरत जी घर ही में वैरागी

पर्वोपदासमास्थाय जिनागारे समाहितः ।
कुर्वन् सामायिकं सोऽधान्मुनिवृत्तं च तत्क्षणम् ॥ 112 ॥

(आदिपु. II पृ. 324)

वे पर्व के दिन उपवास की प्रतिज्ञा लेकर चित्त को स्थिर कर सामायिक करते हुए जिनमंदिर में ही रहते थे और उस समय ठीक मुनियों का आचरण धारण करते थे ।

जिनानुस्मरणे तस्य समाधानमुपेयुषः ।
शैथिल्याद् गात्रबन्धस्यससस्तान्याभरणान्यहो ॥ 143 ॥

जिनेन्द्र देव का स्मरण करने में वे सावधान को प्राप्त हो रहे थे उनका चित्त स्थिर हो रहा था और आश्चर्य है कि शरीर के बन्धन शिथिल होने से उनके आभूषण भी निकल पड़े थे ।

तथापि बहुचिन्तस्य धर्मचिन्ताऽभवद् दृढा ।
धर्मेहि चिन्तिते सर्वं चिन्त्यं स्यादनुचिन्तितम् ॥ 114 ॥

यद्यपि उन्हें बहुत पदार्थों की चिन्ता करनी पड़ती थी तथापि उनके धर्म की चिन्ता अत्यन्त दृढ़ थी सो ठीक ही है क्योंकि धर्म की चिन्ता करने पर चिन्ता करने योग्य समस्त पदार्थों का चिन्तवन अपने आप हो जाता है ।

भरत चक्रवर्ती क्षायिक सम्यग्दृष्टि, तद्भवमोक्षगामी, अनेक पूर्वभवों से धर्म से सुसंस्कृत होने के कारण वे संसार में अतुल भोग वैभव के बीच में रहते हुए भी उनकी दृष्टि धर्म की ओर विशेष रहती थी । क्षायिक सम्यग्दृष्टि होने के कारण मोक्ष को प्राप्त कर लिये थे । पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक होने के कारण अनन्तानुबन्धी एवं अप्रत्याख्यान कषायों के क्षयोपशम से आंशिक वीतरागी भी थे। परन्तु छट्ठे-सप्तम गुणस्थानवर्ती आदि महामुनीश्वरों के समान वीतरागी नहीं थे। यदि उस प्रकार होते तो सवस्त्र अवस्था में महल में 96 हजार रानियों के बीच में रह ही नहीं सकते थे । श्रावक अपेक्षा भरत को घर में वैरागी मानना यथार्थ होते हुए भी मुनि योग्य वीतरागी नहीं थे । जैसे- सामायिक में स्थित व्रती श्रावक को आचार्यों ने उपचार से महाव्रती की संज्ञा दी । उसी प्रकार भरत चक्रवर्ती भी उपचार से वीतरागी थे।

क्योंकि आध्यात्मिक दृष्टि से अभेद रत्नत्रय धारी को ही यथार्थ वीतरागी कहा है । कुछ भोगवादी भोग करते हुए भरत चक्रवर्ती का उदाहरण देकर स्वयं को वीतरागी सिद्ध करते हैं, इसमें उनकी वीतराग दृष्टि नहीं परन्तु रागदृष्टि है, और एक बात यह है कि भरत चक्रवर्ती क्षायिक सम्यग्दृष्टि के साथ व्रती थे वे विशाल भूभाग के राज्यभार को वहन करते हुए भी गुरुओं की सेवा, मुनियों को आहारदान देना, जिनार्चना, मन्दिर निर्माण, सामायिक आदि सम्पूर्ण कार्य करते थे परन्तु आज के भोगवादी बिना षट् कर्त्तव्य पालन करते हुए स्वयं को वीतरागी सिद्ध करते हैं । भरत के नाम पर वीतरागता की आड़ में धर्म-कर्म रहित होकर केवल वीतराग की चर्चा करते हुए स्वयं को वीतरागी मानना वीतराग धर्म एवं भरत चक्रवर्ती के लिए लाञ्छन लगाना है ।

जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि -

तस्याखिलाः क्रियारम्भा धर्मचिन्तापुरस्पराः ।
जाता जातमहोदर्कपुण्यपाकोत्थसंपदः ॥ 115 ॥

बड़े भारी फल देने वाले पुण्य कर्म के उदय से जिन्हें अनेक सम्पदाएँ प्राप्त हुई हैं ऐसे भरत की समस्त क्रियाओं का प्रारम्भ धर्म के चिन्तवनपूर्वक ही होता था अर्थात् महाराज भरत समस्त कार्यों के प्रारम्भ में धर्म का चिन्तवन करते थे ।

प्रातरून्मीलिताक्षः सन् सन्ध्यारागारुणा दिशः ।
स मेनेऽर्हत्पदाम्भोजरागेणेवानुरञ्चिताः ॥ 116 ॥

वे प्रातःकाल आँख खोलकर जब समस्त दिशाओं को सबेरे की लालिमा से लाल-लाल देखते थे तब ऐसा मानते थे मानो ये दिशाएँ जिनेन्द्रदेव के चरणकमलों की लालिमा से ही लाल-लाल हो गयी है ।

प्रातरुद्यन्तमुद्धूतनैशान्धतमसं रविम् ।
भगवत्केवलार्कस्य प्रतिबिम्बमस्त सः ॥ 118 ॥

जिसने रात्रि का गाढ़ अन्धकार नष्ट कर दिया है ऐसे सूर्य को प्रातः काल के समय उदय होता हुआ देखकर वे ऐसा समझकर उठते थे मानो यह भगवान् के केवल ज्ञान का प्रतिबिम्ब ही हो ।

प्रभातमरुतोद्धतप्रबुद्धकमलाकरात् ।
हृदि सोऽधाज्जिनालापकलापानिव शीतलान् ॥ 119 ॥

प्रातःकाल की वायु के चलने से खिले हुए कमलों के समूह को वे अपने हृदय में जिनेन्द्र भगवान् की दिव्य ध्वनि के समूह के समान शीतल समझते थे ।

धर्मराज भरत -

यथा राजा तथा प्रजा --

धर्मशीले महीपाले यान्ति तच्छलितां प्रजाः ।
अताच्छील्यमतच्छीले यथा राजा तथा प्रजा ॥ 97 ॥

(आ. पु. II प. 41 पृ. 324)

यदि राजा धर्मात्मा होता है तो प्रजा भी धर्मात्मा होती है और राजा धर्मात्मा नहीं होता है तो प्रजा भी धर्मात्मा नहीं होती है । यह नियम है कि जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है ।

तदा कालानुभावेन प्रायो धर्म प्रिया नराः ।
साधीयः साधुवृत्तेऽस्मिन् स्वामिन्यासन् हिते रताः ॥ 98 ॥

उस समय काल के प्रभाव से प्रायः सभी लोग धर्मप्रिय थे । सो ठीक ही है क्योंकि सदाचारी भरत के राजा रहते हुए सब लोग अपना हित करने में लगे हुए थे-

सुकालश्च सुराजा च समं सन्निहितं द्वयम् ।
ततो धर्मप्रिय जाताः प्रजास्तदनुरोधतः ॥ 99 ॥

उस समय अच्छा राजा और अच्छी प्रजा दोनों ही एक साथ मिल गये थे इसलिए राजा के अनुरोध से प्रजा धर्म प्रिय हो गई थी ।

एषः धर्मप्रियः सम्राट धर्मस्थानभिनन्दति ।
मत्त्वेति निरिवलो लोकस्तदा धर्मे रतिं व्यधात् ॥ 100 ॥

यह सम्राट स्वयं धर्मप्रिय है और धर्मात्मा लोगों का सम्मान करता है यही मानकर उस समय लोग धर्म में प्रीति करने लगे थे ।

स धर्मविजयी सम्राट सद्वृत्तः शुचिरूर्जितः ।
प्रकृतिष्वनुरक्तासु व्याद्यात् धर्मक्रियादरम् ॥ 101 ॥

वह चक्रवर्ती धर्म विजयी था, सदाचारी था, पवित्र था और बलिष्ठ था इसलिए ही अपने पर प्रेम रखने वाली प्रजा में धार्मिक क्रियाओं का आदर करता था अर्थात् प्रजा को धार्मिक क्रियायें करने का उपदेश देता था ।

भरतोऽभिरतो धर्मे वयं तदनुजीविनः ।
इति तद्वृत्तमन्वीयु मौलिबद्धा महीक्षितः ॥ 102 ॥

भरत धर्म में तत्पर है और हम लोग उसके सेवक हैं यही समझकर मुकुटबद्ध राजा उनके आचरण का अनुसरण करते थे ।

सोऽयं साधित कामार्थश्चक्री चक्रानुभावतः ।
चरितार्थ द्वय तस्मिन् भेजे धर्मेकतान्ताम् ॥ 103 ॥

चक्र के प्रभाव से अर्थ और काम दोनों ही जिनके स्वाधीन हो रहे हैं चक्रवर्ती भरत अर्थ और काम की सफलता होने पर केवल धर्म में एकाग्रता को प्राप्त हो रहे थे ।

जो प्रजा की निःस्वार्थ भाव से सेवा रक्षा करता है वह राजा है । मेरे मतानुसार राजा वही है जो प्रजा का सर्वश्रेष्ठ सेवक हो । राजा को क्षत्रिय कहते हैं । इसका अर्थ यह है कि जो दूसरों के क्षत (क्षति) से प्रजा की रक्षा करता है वह क्षत्रिय है । इससे सिद्ध होता है राजा, प्रजा का परम संरक्षक है । महाभारत में कहा भी है - **''भवितव्यं सदा राज्ञा गर्भिणी सह धर्मिणी ''** ।

जैसे गर्भधारी माता गर्भस्थ सन्तान की सुरक्षा एवं भलाई के लिए सुयोग्य आहार-विहार, आचार-विचार करती है उसी प्रकार राजा का धर्म प्रजा की रक्षा के लिये सदा तत्पर रहना चाहिये । विश्व-राजनीति शास्त्र के वर्तमान काल का आद्य प्रणेता कौटिल्य (चाणक्य) ने कहा भी है -

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रिय हितम् ॥

प्रजा का सुख ही राजा के लिये सुख स्वरूप है । प्रजा का हित ही राजा के लिये हित है । जो स्वयं (राजा) के लिए सुखकर ,हितकर होता है वह यथार्थ राजा के लिये हितकर या सुखकर नहीं है । प्रजा के लिए जो हितकर व प्रिय है वही राजा के लिये, हितकर व प्रिय है अर्थात् राजा का सम्पूर्ण कर्त्तव्य प्रजाहित,प्रजासुख होता है ।

प्राचीन काल में राजनीति वस्तुतः एक अभिन्न धर्मनीति थी । राजा व्यावहारिक धर्म राजनीति है । धर्म, सदाचार, नीति नियम से रहित राजनीति, रक्षकनीति न होकर भक्षकनीति होती है और राजा रक्षक न होकर भक्षक बन जाता है । इसीलिए सन्त तुलसीदास ने रामचरितमानस में कहा है --

''चाहिये धरमशील नर बाहू ।''

पूज्यपाद स्वामी ने शांति भक्ति में कहा भी है - -'प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः' अर्थत् भूमिपाल (राजा, नेता) धार्मिक हो, बलवान हो एवं प्रभावशाली हो । राजा अपनी नैतिक शक्ति एवं सदाचार के माध्यम से जन-गण के मनरूपी

सिंहासन में विराजमान हो जाता है । राजनीति मर्मज्ञ ने कहा भी है -''धर्म्मेण जयति लोकान्'' राजा धर्म से लोक के ऊपर विजय प्राप्त करता है ।''नीतिशास्त्रानुगो राजा'' राजा नीतिशास्त्र के अनुसार आचार करने वाला होता है । तुलसीदास ने कहा भी है -''करण साधुमत, लोकमत, नृपनय, निगमनिचोई'' ।

राजा को साधु के उपदेश (गत) प्रजा के मत (अभिप्राय) (आवश्यकतानुसार) राजनीति के आधार शास्त्रानुकूल शासन करें । राजा उच्छृंखल रूप से तानाशाही होकर मनमाना नहीं करें । वे दूसरों के हित के लिये हितकांक्षी लोगों से उपदेश, प्रेरणा, मार्गदर्शन प्राप्त करके कार्य करें यथा --

मोहि उपदेश दीन्ह गुरु नीका ।
प्रजा सचिव सम्मत सबही का ॥

रामचन्द्र कहते हैं कि यह तो गुरु उपदेश दिये हैं और प्रजा, मंत्री आदि की सहमति भी है । मैं उपर्युक्त सभी आधारों से राज्यशासन करता हूँ । भारतीय इतिहास में राम जिस धर्मनीति पर शासन कार्य किये वह शासन इतना महान था और उनका राज्य इतना उत्कृष्ट व सर्वोदय था कि अच्छे राज्य को रामराज्य की उपाधि दी जाती है । रामराज्य का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने कहा है --

दैहिक-दैविक, भौतिक तापा ।
रामराज नहिं काहु हि व्यापा ॥
सब दुःख वरजित प्रजा सुखारी ।
धरमशील सुन्दर नर नारी ॥
वयरू न कर काहू सन कोई ।
रामप्रताप विषमता खोई ॥
भूप प्रताप भानु बल पाई ।
कामधेनु भै भूमि सुहाई ॥

तुलसीदास ने रामचरितमानस में जिस रामराज्य का वर्णन किया है वह एक आदर्श राष्ट्र व राजा का वर्णन है । ऐसे महान राजाओं से सम्पूर्ण राष्ट्र प्रेरित होकर महान बन जाता है । पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा भी है --

''महान नेताओं में कतिपय ऐसे गुण होते हैं जो सम्पूर्ण राष्ट्र को प्रेरणा देते हैं और उन्हें कार्य करने को प्रेरित करते हैं ।''

इसके विपरीत जो राजनीति है वह यथार्थ शोषण नीति है । एवं वह राजा

राक्षस है । इस प्रकार तुलसीदास ने दुष्ट राजाओं के बारे में वर्णन करते हुये कहा है --

नृप पाप-परायण धर्म नाहीं ।
करिदण्डविडब प्रजानि तहीं ॥
जासु राजप्रिय प्रजा दुःखारी ।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥
सोचिअ नृपति जो नीत न जाना ।
जोहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥
सचिव बैद गुरु तीनि जौ प्रिय बोलहि भय आस ।
राज धर्म तन तीनि कर होई वेग ही नास ॥

उपर्युक्त सिद्धान्त से सिद्ध होता है कि जो राजा न्यायनीति से रहित होकर राज्य शासन करता है उससे प्रजा को विभिन्न यातनायें सहन करनी पड़ती हैं, राष्ट्र आर्थिक, नैतिक दृष्टि से दुर्बल हो जाता है । अन्ततोगत्वा राजा भी नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है । इसीलिये डेनियल अ, कौन्सेल ने कहा है - जो नैतिकता ने अनुचित है, वह राजनीति में कभी उचित नहीं हो सकता, जान आर बुथनीट ने कहा भी है -

''सभी राजनीतिक संस्थायें अपने झूठों के परिणामस्वरूप ही अन्त में मिट जाती हैं ।''

''विश्व सभी इतिहास साक्षी है कि जो बर्बर, प्रजाशोषक, प्रजापीड़क, तानाशाही शासक बने हैं, काल उसका अस्तित्व मिटाकर ही रहा जैसे -सत्ता लोलुपी दुर्योधन प्रजापीड़क कंस, जरासन्ध, अहंकारी रावण, तानाशाही नेपोलियन, हिटलर, औरंगजेब आदि ।''

प्राचीन काल में कुछ राज्य में यदा-कदा प्रजातन्त्र शासन (Democracy) का प्रचलन होते हुये भी अधिकतर राज्यतन्त्र शासन का प्रधान्य था । प्रजातन्त्र शासन का वर्णन जैन एवं बौद्ध, हिन्दूशास्त्र में पाया जाता है । इसका वर्णन मैंने ''प्राचीन एवं अर्वाचीन राजनीति विज्ञान'' में विस्तृत रूप से किया है । कुछ संक्षिप्त वर्णन यहाँ भी करता हूँ । बौद्ध एवं जैन शास्त्र से सिद्ध होता है कि महावीर का जन्म एक गणतन्त्र राज्य में हुआ था । राजा चेटक के उस समय के गणराज्य का वर्णन निम्न प्रकार पाया जाता है -

विशो न राजानं वृणानाः । ऋग्वेद 10-124-81 ।

त्वां विशो वृणतां राज्याय । अथर्वेद 3-4-2 ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छान्तु । अथर्वेद 6-87-1 ।
महते जानराज्याय । यजुर्वे. 9-40, 10-18 ।
सभा च मां समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने ।
(अथर्वेद 7-12-1)
जनभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त । विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त । स्वराजस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यै दत्त । (यजु. 10-4)

गणतन्त्रवाद के लिये आधुनिक, राजनैतिक, हस्तियों के जो अभिप्राय हैं वे निम्न प्रकार हैं --

It is a government of the people, by the people and for the people. **Abraham Lincon.**

Democracy is a form of government, in which the governing body is comparatively a large fraction of the entire nation.

Dicey.

Democracy is a government, in which everyone has a share.

Seeley.

उपर्युक्त सिद्धान्त से सिद्ध होता है कि प्रजातन्त्र प्रजा को प्रजा के द्वारा प्रजा के लिये होता है अर्थात् राजा ही प्रजा है, प्रजा ही राजा है । महात्मा गाँधी ने जिस रामराज्य की कल्पना की थी उसका आधार ''राम राजा, राम प्रजा, राम ही साहूकार।'' परन्तु आज प्रजातंत्र के नाम पर या जनतंत्र के नाम पर तानाशाही राजा से भी अधिक शोषण ,उत्पीड़न चल रहा है । आज कुछ गुण्डातत्व लाठी के जोर या अर्थ के बल पर प्रजा से वोट जबरदस्ती लेकर नेता आदि बनकर प्रजा को उत्पीड़न करते हैं । कुछ नेता जातिवाद फैलाते हैं और कुछ परिवारवाद, कुछ सम्प्रदायवाद को फैला रहे हैं ।इससे राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अशान्ति, कलह, युद्ध चलता है ।अज्ञप्रजा कुछ धूर्त नेताओं के वाक्जाल में आकर मतदान दे देते हैं जिससे वह नेता शासक बनकर रक्षक न होकर भक्षक हो जाते हैं । इसलिये प्लेटो ने लोकतन्त्रशासन को मूर्ख का शासन बताया था ।

There are nine foole in the world for one wise man. Democracy, therefore, means the rule of fools.

Carlyle.

बाइबिल में भी कहा है -

''यदि नेत्रहीन व्यक्ति का नेतृत्व करने वाला भी नेत्रहीन ही हो तो दोनों कूप में गिर पड़ेंगे ।''

प्राचीन काल में अधिकांशत: राजतन्त्र होते हुए भी कुछ प्रसिद्ध राजाओं के शासन इतने महान, उदात्त, प्रजाहितकारी थे, जिससे उन्हीं के शासन आधुनिक जनतन्त्रवाद (Democracy),समाजवाद(Sociolism), साम्यवाद (Communism) आदि से भी अधिक सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय थे ।प्राचीन साहित्य एवं इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि राजाराम, भरतचक्रवर्ती, ऋषभदेव, धर्मराज युधिष्ठिर, राजा हरिश्चन्द्र, रतिदेव भरत(श्री राम के अनुज), विक्रमादित्य, अशोक, चन्द्रगुप्त मौर्य खारवेल आदि इतने उदारमना, धर्मप्राणा, प्रजावत्सल राजा थे जिनका शासन आधुनिक साम्यवादादि से अधिक प्रजाहितकारी था, इसलिये तो उत्कृष्ट, सर्वोदय, सुखशान्तिपूर्ण राज्य को रामराज्य कहते हैं ।रामराज्य माने श्री रामचन्द्र का शासन कालीन राज्य ।''ऋषभदेव पुत्र भरत चक्रवर्ती भी इतने महान थे जिससे सम्पूर्ण विशालतम अखण्ड भारत (षट्खण्ड भारत) के राजा तथा प्रजा उन्हीं की छत्रछाया में शान्ति से निवास करते थे । इतना ही नहीं जैसे श्री राम के शासन के नाम पर 'रामराज्य' विख्यात हुआ उसी प्रकार भरत के नाम पर भारतवर्ष का नामकरण हुआ।''

आज भरत के भारतवर्ष में एवं रामचन्द्र के 'रामराज्य' में जो आधुनिक, स्वतंत्र भारत सरकार तथा अन्यान्य देश की सरकार,प्रजातन्त्रादि के नाम पर सत्तालोलुपी भ्रष्टाचार, शोषण, आक्रमण, शीतयुद्ध, आतंकवाद, गृहयुद्ध, महायुद्ध का प्रचार-प्रसार कर रही है, वह केवल प्रजातन्त्र के नाम पर ही अमिट कलंक है परन्तु राजतन्त्र के नाम पर भी अक्षम्य दोष है ।

वर्तमान में जो शासनतन्त्र में भ्रष्टाचार चल रहा है उसका मूल कारण शासक राजा (नेता, मंत्री) आदि शासित प्रजा (नागरिकों) का अनैतिक,अधार्मिक, असादाचारी होना है ।प्रजातन्त्र या राजतन्त्रादि का कोई महत्त्व नहीं है, महत्त्व है शासक एवं शासितों का धार्मिक, सदाचारी, प्रमाणिक, कर्त्तव्यनिष्ठ, देशप्रेम, त्याग भाव होना ।

''बारह वर्ष दयादत्ति''
अदाद्द्वादशवर्षाणि दानं चासौ यथोप्सितम् ।
लोकाय कृपया युक्तः परीक्षापरिवर्जितम् ॥ 104 ॥

भरत दया से युक्त हो बिना किसी परीक्षा के बारह वर्ष तक लोगों के लिये मनचाहा दान देते रहे । (हरिवंश पु. स. 11 पृ. 205)

ब्राह्मण वर्ण की आद्य स्थापना -

जिनशासनवात्सल्यभक्तिभार वशीकृतः ।
परिक्ष्य श्रावकान् पश्चाद् व्यवग्रीह्यः दुरादिभिः ॥ 105 ॥
काकिण्या लक्षणं कृत्वा सुरत्नत्रयसूत्रकम् ।
सुम्पूज्य स ददौ तेभ्यो भक्तिदानं कृते युगे ॥ 106 ॥

तदनन्तर जिस शासन सम्बन्धी वात्सल्य और भक्ति के भार से वशीभूत होकर उन्होंने जौ तथा धान्य आदि के अङ्कुरों से श्रावकों की परीक्षा की, कंकिणी, रत्न से निर्मित रत्नत्रयसूत्र यज्ञोपवीत को उनका चिह्न बनाया । और आदर सत्कार कर कृत युग में उन्हें भक्ति पूर्वक दान दिया ।

ततस्ते ब्राह्मणाः प्रोक्ताः व्रतिनो भरतादृताः ।
वर्णत्रयेणपूर्वेण जाता वर्णचतुष्टयी ॥ 107 ॥

आगे चलकर भरत के द्वारा आदर को प्राप्त हुए वे व्रती ब्राह्मण कहने लगे । इस तरह पहले कहे हुये तीन वर्णों के साथ मिलकर अब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हो गये ।

आ. कनकनंदी राज. गृहमंत्री कैलाश मेघवाल को स्व-रचित साहित्य आशीर्वाद में देते हुए

4 चक्रवर्ती के अद्भुत स्वप्न दर्शन

कितना ही काल बीत जाने पर एक दिन चक्रवर्ती भरत ने अद्भुत फल दिखाने वाले कुछ स्वप्न देखे । (आदिपुराण पर्व 41, पृ. -317)

उन स्वप्नों के देखने से जिन्हें चित्त में कुछ खेद सा उत्पन्न हुआ है, ऐसे वे भरत अचानक जाग उठे, और उन स्वप्नों का फल जानने के लिये विचार करने लगे।

असत्यफला इमे स्वप्नाः प्रायेण प्रतिभान्ति माम् ।
मन्ये दूरफलांश्चैतान् पुराकल्पे फलप्रदान् ॥ 3 ॥

कि ये स्वप्न मुझे प्रायः बुरे फल देने वाले जान पड़ते हैं तथा साथ में यह भी जान पड़ता है कि ये स्वप्न कुछ दूर आगे के पंचम काल फल देने वाले होंगे ।

कुतश्चिद् भगवत्यद्य प्रतपत्यादि भर्त्तरि ।
प्रजानां कथमेवैवंविधोपप्लवसम्भवः ॥ 4 ॥

क्योंकि इस समय भगवान् ऋषभदेव के प्रकाशमान रहते हुये प्रजा को इस प्रकार का उपद्रव होना कैसे सम्भव हो सकता है ?

ततः कृतयुगस्यास्य व्यतिक्रान्तौ कदाचन ।
फलमेते प्रदास्यन्ति नूनमेनः प्रकर्षतः ॥ 5 ॥

इसलिये कदाचित् इस कृतयुग (चतुर्थ काल) के व्यतीत हो जाने पर जब पाप की अधिकता होने लगेगी, तब ये स्वप्न अपना फल देंगे ।

युगान्त विप्लवोदकस्ति एतेऽनिष्टशंसिनः ।
स्वप्नाः प्रजाप्रजापाल साधारण फलोदयाः ॥ 6 ॥

युग के अन्त में विप्लव फैलाना ही जिनका फल है, ऐसे ये स्वप्न अनिष्ट को सूचित करने वाले हैं और राजा तथा प्रजा को समान फल देने वाले हैं ।

ततः क्षणमिव स्थित्वा महास्थाने नृपैर्वृतः ।
वन्दनाभक्तये गन्तुमुद्यतोऽभूद् विशांपतिः ॥ 15 ॥

इस प्रकार मन में विचार कर, महाराज भरत ने बड़े सबेरे बहुमूल्य शय्या से उठकर प्रातःकाल की समस्त क्रियायें की और फिर थोड़ी देर एक सभा में बैठ कर अनेक राजाओं के साथ भगवान की वन्दना तथा भक्ति के अर्थ जानने के लिये उद्यम किया ।

चक्रवर्ती का ब्राह्मणों के बारे में धर्मचक्री से प्रश्न -

भरत चक्रवर्ती अनेक राजाओं के साथ भक्ति सहित समवशरण में जा पहुँचा।

स्तुत्वास्तुतिभिरीशानमभ्यर्च्य च यथाविधि ।
निषसाद यथास्थानं धर्मामृत पिपासितः ॥ 27 ॥

महाराज भरत उन भगवान की अनेक स्तोत्रों के द्वारा स्तुति कर और विधिपूर्वक पूजा कर धर्मरूप अमृत को पीने की इच्छा करते हुये योग्य स्थान पर जा बैठे ।

भक्तया प्रणमतस्तस्य भगवत्पादपङ्कजे ।
विशुद्धि परिणामाङ्गमवधिज्ञानमुद्बभौ ॥ 28 ॥

भक्तिपूर्वक भगवान के चरण कमलों को प्रणाम करते हुये, भरत के परिणाम इतने विशुद्ध हो गये थे कि उनको उसी समय अवधि ज्ञान उत्पन्न हो गया ।

पीत्वाऽथो धर्मपीयूषं परां वृप्तिमवापिवान् ।
स्वमनोगतमित्युश्चैर्भगवन्तं व्यजिज्ञपत ॥ 29 ॥

तदनन्तर धर्म रूपी अमृत का पानकर वे बहुत ही सन्तुष्ट हुये और उच्च स्वर से अपने हृदय का अभिप्राय भगवान से इस प्रकार निवेदन करने लगे ।

मयासृष्टा द्विजन्मानः श्रावकाचारचुञ्चवः ।
त्वद्गीतोपासकाध्यायसूत्रमार्गानुगामिनः ॥ 30 ॥

कि हे भगवान् ! मैंने आपके द्वारा कहे हुये उपासकाध्याय सूत्र के मार्ग पर चलने वाले तथा श्रावकाचार में निपुण ब्राह्मण निर्माण किये हैं अर्थात् ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की है ।

एकाद्येकादशान्तानि दत्तान्येभ्यो मया विभो ।
व्रतचिह्नानि सूत्राणि गुणभूमिविभागतः ॥ 31 ॥

हे विभो ! मैंने इन्हें ग्यारह प्रतिमाओं विभाग से व्रतों को चिह्नस्वरूप एक से लेकर ग्यारह तक यज्ञोपवीत दिये हैं ।

विश्वस्य धर्मसर्गस्य त्वयि साक्षात्प्रणेतरि ।
स्थिते मयातिवालिश्यादि दमाचरितं विभो ॥ 32 ॥

हे प्रभो ! समस्त धर्मरूपी सृष्टि को साक्षात् उत्पन्न करने वाले आपके विद्यमान रहते हुये भी मैंने अपनी बड़ी मूर्खता से यह काम किया है ।

दोषः कोऽत्र गुणः कोऽत्र किमेतत् साम्प्रतं न वा ।
दोलायामानमिति मे मनः स्थापय निश्चितौ ॥ 33 ॥

हे देव ! इन ब्राह्मणों की रचना में दोष क्या है ? गुण क्या है ? और इनकी यह रचना योग्य हुई अथवा नहीं ? इस प्रकार झूले के समान झूलते हुये मेरे चित्त को किसी निश्चय में स्थिर कीजिये अर्थात् गुण, दोष, योग्य अथवा अयोग्य का निश्चय कर मेरा मन स्थिर कीजिये ।

चक्रवर्ती का स्वप्न के बारे में प्रश्न -

अपि चाद्य मया स्वप्ना निशान्ते षोडशेक्षिताः ।
प्रायोऽनिष्टफलाश्चैतेमया देवाभिलक्षिताः ॥ 34 ॥

इसके सिवाय हे देव ! आज मैंने रात्रि के अंतिम भाग में सोलह स्वप्न देखे हैं और मुझे ऐसा जान पड़ता है कि ये स्वप्न प्रायः अनिष्ट फल देने वाले हैं ।

यथादृष्टमुन्यस्ये तानिमान् परमेश्वरः ।
यथास्वं तत्फलान्यस्मत्प्रीतिविषयं नय ॥ 35 ॥

हे परमेश्वर ! वे स्वप्न मैंने जिस प्रकार देखे हैं उसी प्रकार उपस्थित करता हूँ। उनका जैसा कुछ फल हो उसे मेरी प्रतीति का विषय करा दीजिये ।

सिंहो मृगेन्द्रपोतश्च तुरंगः करिभारभृत् ।
छागा वृक्षलतागुल्मशुष्कपत्रोपभोगिनः ॥ 36 ॥
शारवामृगा द्विपस्कन्धमारूढाः कौशिकाः खगैः ।
विहितोपद्रवा ध्वाङ्क्षैः प्रमथाश्च प्रमोदिनः ॥ 37 ॥
शुष्कमध्यं तडागं च पर्यन्तप्रचुरोढकम् ।
पांशुधूसरितो रत्नराशिः श्वार्थ भुगर्हितः ॥ 38 ॥
तारुण्यशाली वृषभः शीतांशु परिवेषयुक् ।
मिशोऽङ्गीकृतसाङ्गत्यौ पुङ्गवौ सङ्गलच्छियौ ॥ 39 ॥
रविराशावधूरत्नवंतसोऽब्दैस्तिरोहितः ।
संशुष्कस्तरुरच्छाद्यो जीर्णपर्णसमुच्चयः ॥ 40 ॥
षोडशैतेऽद्य यामिन्यां दृष्टाः स्वप्ना विदां वर ।
फलविप्रतिपत्तिं मे तदगतां त्वमपाकुरु ॥ 41 ॥

(1) सिंह, (2) सिंह का बच्चा, (3) हाथी के भार को धारण करने वाला घोड़ा, (4) वृक्ष लता और झाड़ियों के सूखे पत्ते खाने वाले बकरे, (5) हाथी के

स्कन्ध पर बैठे हुये वानर, (6) कौआ आदि पक्षियों के द्वारा उपद्रव किये हुये उल्लूक (7) आनन्द करते हुये भूत, (8) जिसका मध्य भाग सूखा हुआ है और किनारों पर खूब पानी भरा हुआ है ऐसा तालाब, (9) धूलि से धूसरित रत्नों की राशि, (10) जिसकी पूजा की जा रही है ऐसा नैवेद्य को खाने वाला कुत्ता, (11) जवान बैल, (12) मण्डल से युक्त चन्द्रमा (13) जो परस्पर में मिल रहे हैं और जिनकी शोभा नष्ट हो रही है ऐसे दो बैल, (14) जो दिशारूपी स्त्री रत्नों से बने हुये आभूषणों के समान हैं तथा जो मेघों से आच्छादित हो रहा है ऐसा सूर्य, (15) छाया रहित सूखा वृक्ष, (16) पुराने पत्तों का समूह । हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ ! आज मैंने रात्रि के समय ये सोलह स्वप्न देखे हैं । हे नाथ ! इनके फल के विषय में जो मुझे सन्देह है, उसे दूर कर दीजिये ।

इतितत्फलविज्ञाननिपुणोऽप्यवधित्विषा ।
सभाजनप्रबोधार्थं पाप्रच्छ निधिराट्जिनम् ॥ 42 ॥

यद्यपि निधियों के अधिपति महाराज भरत अपने अवधिज्ञान के द्वारा उन स्वप्नों का फल जानने में निपुण थे, तथापि सभा के लोगों को समझाने के लिए उन्होंने भगवान् से इस प्रकार पूछा था । भरत का प्रश्न समाप्त होने पर सद्गुरु भगवान् ऋषभदेव अपने वचन रूपी अमृत के सिंचन से समस्त सभा को सन्तुष्ट करते हुये इस प्रकार व्याख्यान करने लगे । उस समय भगवान की दिव्य ध्वनि के अर्थ को सुनने की इच्छा से सावधान हुई वह सभा ऐसी जान पड़ती थी मानो ध्यान में मग्न हो रही हो अथवा चित्र की बनी हुई हो । वे कहने लगे कि हे वत्स, तूने जो धर्मात्मा द्विजों की पूजा की है सो बहुत अच्छा किया है परन्तु इसमें कुछ दोष हैं उसे तू सुन।

कलियुग की स्थिति -

आयुष्मान् भवता सृष्टा य एते गृहमेधिनः ।
ते तावदुचिताचारा यावत्कृत युगस्थितिः ॥ 46 ॥

हे आयुष्मान् ! तूने जो गृहस्थ की रचना की है सो जब तक कृतयुग अर्थात् चतुर्थकाल की स्थिति रहेगी तब तक तो ये उचित आचार का पालन करते रहेंगे परन्तु जब कलियुग निकट आ जायेगा तब ये जातिवाद के अभिमान से सदाचार से भ्रष्ट होकर समीचीन मोक्ष-मार्ग के विरोधी बन जायेंगे ।

ततः कलियुगेऽभ्यर्णे जतिवादावलेपतः ।
भ्रष्टाचाराः प्रपत्स्यन्ते सन्मार्गप्रत्यनीकताम् ॥ 47 ॥

तेऽमी जातिमदाविष्टा वयं लोकाधिका इति ।
पुरा दुरागमैर्लोकं मोहयन्ति धनाशया ॥ 48 ॥

पंचमकाल में ये लोग हम सब लोगों में बड़े हैं, इस प्रकार जाति के मद से युक्त होकर केवल धन की आशा से खोटे-खोटे शास्त्रों के द्वारा लोगों को मोहित करते रहेंगे ।

सत्कारलाभसंवृद्धगर्वा मिथ्यामदोद्धताः ।
जनान प्रतारयिष्यन्ति स्वयमुत्पाद्य दुःश्रुतीः ॥ 49 ॥

सत्कार के लाभ से जिनका गर्व बढ़ रहा है और जो मिथ्यामद से उद्धत हो रहे हैं ऐसे ये ब्राह्मण लोग स्वयं मिथ्या शास्त्रों को बनाकर लोगों को ठगा करेंगे ।

त इमे कालपर्यन्ते विक्रियां प्राप्य दुर्दृशः ।
धर्मद्रुहो भविष्यन्ति पापोपहतचेतनाः ॥ 50 ॥

जिनकी चेतना पाप से दूषित हो रही है ऐसे ये मिथ्यादृष्टि लोग इतने समय तक विकार भाव को प्राप्त होकर धर्म के द्रोही बन जायेंगे ।

सत्त्वोपघातनिरता मधुमांसाशनप्रियाः ।
प्रवृत्तिलक्षणं धर्मं घोषयिष्यन्त्यधार्मिकाः ॥ 51 ॥

जो प्राणियों की हिंसा करने में तत्पर हैं तथा मधु और मांस का भोजन जिन्हें प्रिय है ऐसे ये अधर्मी ब्राह्मण हिंसा रूप धर्म की घोषणा करेंगे ।

अहिंसालक्षणं धर्मं दूषयित्वा दुराशयाः ।
चोदनालक्षणं धर्मं पोषयिष्यन्त्वमी बत ॥ 52 ॥

खेद है कि दुष्ट आशय वाले ये ब्राह्मण अहिंसा रूप धर्म को दूषित कर वेद में कहे हिंसा रूप धर्म को पुष्ट करेंगे ।

पापसूत्रधरा धूर्ताः प्राणिमारणतत्पराः ।
वत्सर्ययुगे प्रवर्त्स्यन्ति सन्मार्गपरिपन्थिनः ॥ 53 ॥

पाप का समर्थन करने वाले, शास्त्र को जानने वाले अथवा पाप के चिह्न स्वरूप यज्ञोपवीत को धारण करने वाले और प्राणियों को मारने में सदा तत्पर रहने वाले ये धूर्त ब्राह्मण आगामी युग अर्थात् पंचम काल में समीचीन मार्ग के विरोधी हो जायेंगे।

द्विजातिसर्जनं तस्मान्नाद्य तद्यपि दोषकृत् ।
स्याद्वोषबीजमायत्यां कुपाखण्डप्रवर्तनात् ॥ 54 ॥

इसीलिये यह ब्राह्मणों की रचना यद्यपि आज दोष उत्पन्न करने वाली नहीं

है तथापि आगामी काल में खोटे पाखण्ड मतों की प्रवृत्ति करने से दोष का बीज रूप है ।

इति कालान्तरे दोषबीजमप्येतदञ्जसा ।
नाधुना परिहर्तव्यं धर्मसृष्ट्यनतिक्रमात् ॥ 55 ॥

इस प्रकार यद्यपि यह ब्राह्मणों की सृष्टि कालान्तर में दोष का बीजरूप है तथापि धर्म सृष्टि का उल्लंघन न हो इसलिए इस समय इसका परिहार करना भी अच्छा नहीं है ।

यथान्नमुपयुक्तं सत् क्वचित्कस्यापि दोषकृत् ।
तथाऽप्यपरिहार्यं तद् बुधैर्बहुगुणास्थया ॥ 56 ॥
तथेदमपि मन्तव्यमद्यत्वे गृणवत्तया ।
पुंसामाशयबैषम्यात् पश्चाद् यद्यपि दोषकृत् ॥ 57 ॥

जिस प्रकार खाया हुआ अन्न यद्यपि कहीं किसी को दोष उत्पन्न कर देता है तथापि अनेक गुणों की आस्था से विद्वान् लोग उसे छोड़ नहीं सकते, उसी प्रकार यद्यपि ये पुरुषों के अभिप्रायों की विषमता से आगामी काल में दोष उत्पन्न करने वाले हो जायेंगे तथापि इस समय इन्हें गुणवान् ही मानना चाहिए ।

इदमेवं गतं हन्त यच्च ते स्वप्नदर्शनम् ।
तदप्येद् युगे धर्मस्थितिह्रासस्य सूचनम् ॥ 58 ॥

इस प्रकार यह तेरी ब्राह्मण रचना का उत्तर तो हो चुका, अब तूने जो स्वप्न देखे हैं, खेद है कि वे भी आगामी युग (पंचम काल) में धर्म की स्थिति के ह्रास को सूचित करने वाले हैं ।

ते च स्वप्ना द्विधाऽऽम्नाताः स्वस्थास्वस्थात्मगोचराः ।
समैस्तु धातुभिः स्वस्था विषमैरितरे मताः ॥ 59 ॥

वे स्वप्न दो प्रकार के माने गये हैं एक अपनी स्वस्थ अवस्था में दिखने वाले और दूसरे अस्वस्थ अवस्था में दिखने वाले ।जो धातुओं की समानता रहते हुए दिखते हैं वे स्वस्थ अवस्था के कहलाते हैं और जो धातुओं की विषमता न्यूनाधिकता रहते हुए दिखते हैं वे अस्वस्थ अवस्था के कहलाते हैं ।

तथ्याः स्युः स्वस्य संदृष्टाः मिथ्यास्वप्ना विपर्ययात् ।
जगत्प्रतीतमेतद्धि विद्धि स्वप्नविमर्शनम् ॥ 60 ॥

स्वस्थ अवस्था में दिखने वाले स्वप्न सत्य होते हैं और अस्वस्थ अवस्थाा में

दिखने वाले स्वप्न असत्य हुआ करते हैं इस प्रकार स्वप्नों के फल का विचार करने में यह जगत् प्रसिद्ध बात है ऐसा तू समझ ।

स्वप्नानां द्वैतमस्त्यन्यद्दोषदैवसमुद्भवम् ।
दोषप्रकोपजा मिथ्यातथ्याः स्युर्दैवसम्भवाः ॥ 61 ॥

स्वप्नों के और भी दो भेद हैं एक दोष से उत्पन्न होने वाले और दूसरे दैव से उत्पन्न होने वाले । उनमें दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होने वाले झूठ होते हैं और देव से उत्पन्न होने वाले सच्चे होते हैं ।

कल्याणाङ्गस्त्वमेवकान्ताद् देवताधिष्ठितश्च यत् ।
न मिथ्या तदिमे स्वप्नाः फलमेषां निबोध मे ॥ 62 ॥

हे कल्याण रूप ! चूँकि तू अवश्य ही देवताओं से अधिष्ठित है इसीलिए तेरे ये स्वप्न मिथ्या नहीं हैं । तू इनका फल मुझसे समझ ।

दृष्टाः स्वप्ने मृगाधीशा ये त्रयोविंशतिप्रभाः ।
निस्स्वप्नानं विहृत्येमां क्षमांक्ष्माभृत्कूटमाश्रिताः ॥ 63 ॥
तत्फलं सन्मतिं मुक्त्वा शेषतीर्थकरोदये ।
दुर्नयानामनुद्भूतिरव्यापनं लक्ष्यतां स्फुटम् ॥ 64 ॥

तूने जो स्वप्न में इस पृथ्वी पर अकेले विहार कर पर्वत के शिखर पर चढ़े हुए तेईस सिंह देखे हैं, उसका स्पष्ट फल यही समझ कि श्री महावीर स्वामी को छोड़कर शेष तेईस तीर्थंकरों के समय में दुष्ट नयों की उत्पत्ति नहीं होगी । इस स्वप्न का फल यही बतलाता है ।

पुनरेकाकिनः सिंहपोतस्यान्वक् मृगेक्षणात् ।
भवेयुः सन्मतेस्तीर्थे सानुषङ्गाः कुलिङ्गिनः ॥ 65 ॥

तदनन्तर दूसरे स्वप्न में अकेले सिंह के बच्चे के पीछे चलते हुए हरिणों का समूह देखने से यह प्रकट होता है कि श्री महावीर स्वामी के तीर्थ में परिग्रह को धारण करने वाले बहुत से कुलिंगी हो जाएंगे ।

करीन्द्रभारनिर्भुग्नपृष्ठस्याश्वस्य वीक्षणात् ।
कृत्स्नान् तपोगुणान्वोढुं नालं दुष्षमसाधवः ॥ 66 ॥

बड़े हाथी के उठाने योग्य बोझ से जिसकी पीठ झुक गयी है ऐसे घोड़े के देखने ये यह मालूम होता है कि पंचम काल के साधु तपश्चरण के समस्त गुणों को धारण करने में समर्थ नहीं हो सकेंगे ।

मूलोत्तरगुणेष्वात्तसङ्गः केचनालसाः ।
भक्ष्यन्तेमूलतः केचित्तेषु यास्यन्ति मन्दताम् ॥ 67 ॥

कोई मूलगुण और उत्तरगुणों के पालन करने की प्रतिज्ञा लेकर उनके पालन करने में आलसी हो जायेंगे, कोई उन्हें मूल से ही भंग कर देंगे और कोई उसमें मन्दता या उदासीनता को प्राप्त हो जायेंगे ।

निध्यानादजयूथस्य शुष्कपत्रोपयोगिनः ।
यान्त्यसदवृत्ततां त्वक्तसदाचाराःपुरा नराः ॥ 68 ॥

सूखे पत्ते खाने वाले बकरों के समूहों को देखने ये यह मालूम होता है कि आगामी काल में मनुष्य सदाचार को छोड़कर दुराचारी हो जायेंगे ।

करीन्द्रकन्धरारूढवामृगविलोकनात् ।
आदिक्षत्रान्वयोच्छित्तौक्ष्मां पास्यन्त्यकुलीनकाः ॥ 69 ॥

गजेन्द्र के कन्धे पर चढ़े हुए वानरों के देखने से जान पड़ता है कि आगे चलकर प्राचीन क्षत्रिय वंश नष्ट हो जायेंगे और नीच कुल वाले पृथ्वी का पालन करेंगे ।

काकैरुलूकसंबाधदर्शनाद्धर्मकाम्यया ।
मुक्त्वा जैनान्मुनीनन्यमतस्थानन्विष्युर्जनाः ॥ 60 ॥

कौवों के द्वारा उल्लू को त्रास दिया जाना देखने से प्रकट होता है कि मनुष्य धर्म की इच्छा से जैन मुनियों को छोड़कर अन्य मत के साधुओं के समीप जायेंगे।

प्रनृत्यतां प्रभूतानां भूतानामीक्षणात् प्रजाः ।
भजेयुर्नामकर्मादीर्व्यन्तरान् देवतास्थया ॥ ७१ ॥

नाचते हुये बहुत से भूतों के देखने से मालूम होता है कि प्रजा के लोग नामकर्म आदि कारणों से व्यन्तरों को देव समझकर उनकी उपासना करने लगेंगे ।

शुष्कमध्यडागस्य पर्यन्तेऽम्बुस्थितीक्षणात् ।
प्रच्युत्यार्यनिवासात् स्याद्धर्मः प्रत्यन्तवासिषु ॥ 72 ॥

जिसका मध्यभाग सूखा हुआ है ऐसे तालाब के चारों ओर पानी भरा हुआ देखने से प्रकट हुआ है कि धर्म आर्यखण्ड से हटकर प्रत्यन्तवासी खण्डों में ही रह जायेगा ।

पांसुधूसररत्नौघनिध्यानादद्विसत्तमाः ।
नैव प्रादुर्भविष्यन्ति मुनयः पञ्चमे युगे ॥ 73 ॥

धूलि से मलिन हुए रत्नों की राशि के देखने से यह जान पड़ता है कि पंचम

काल में ऋद्धिधारी उत्तम मुनि नहीं होंगे ।

शुनोऽर्चितस्य तत्कारैश्चरुभाजनदर्शनात् ।
गुणवत्पात्रसत्कारमाप्स्यन्त्यव्रतिनो द्विजाः ॥ 74 ॥

आदर सत्कार से जिसकी पूजा की गयी है ऐसे कुत्ते को नैवेद्य खाते हुए देखने से मालूम होता है कि व्रतरहित ब्राह्मण गुणी पात्रों से समान सत्कार पायेंगे ।

तरूणस्य वृषस्योच्चैर्नदतो विहृतीक्षणात् ।
तारूण्य एव श्रामण्ये स्थास्यन्ति च देशान्तरे ॥ 75 ॥

ऊँचे स्वर से शब्द करते हुये तरुण बैल का विहार देखने से सूचित होता है कि लोग तरुण अवस्था में ही मुनिपद में ठहर सकेंगे । अन्य अवस्था में नहीं ।

परिवेषोपरक्तस्य श्वेतभानोर्निशामनात् ।
नोत्पत्स्यते तमोभृत्सु समनः पर्ययोऽवधिः ॥ 76 ॥

परिमण्डल से घिरे हुए चन्द्रमा को देखने से यह जान पड़ता है कि पंचमकाल के मुनियों में अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान नहीं होगा ।

अन्योन्यं सह संभूय वृषयोर्गमनेक्षणात् ।
वर्त्स्यन्ति मुनयः साहचर्यान्नैकविहारिणः ॥ 77 ॥

परस्पर मिलकर जाते हुए बैलों को देखने से यह सूचित होता है कि पंचमकाल में मुनिजन साथ-साथ रहेंगे, अकेले विहार करने वाले नहीं होंगे ।

घनावरणरुद्धस्य दर्शनादंशुमालिनः ।
केवलार्कोदयः प्रायो न भवेत् पञ्चमे युगे ॥ 78 ॥

मेघों के आवरण से रुके हुए सूर्य को देखने से यह मालूम होता है कि पंचमकाल में प्रायः केवलज्ञान रूपी सूर्य का उदय नहीं होगा ।

पुंसां स्त्रीणां च चारित्रच्युतिः शुष्कद्रुमेक्षणात् ।
महौषधिरसोच्छेदो जीर्णपर्णविलोकनात् ॥ 79 ॥

सूखा वृक्ष देखने से सूचित होता है कि स्त्री पुरुषों का चारित्र भ्रष्ट हो जायेगा और जीर्ण पत्तों के देखने से मालूम होता है कि महा औषधियों का रस नष्ट हो जायेगा।

स्वप्नानेवफलानेतान् विद्धि दूरविपाकिनः ।
नाद्य दोषस्ततः कोऽपि फलमेषां युगान्तरे ॥ 80 ॥

ऐसा फल देने वाले इन स्वप्नों को तू दूरविपाकी अर्थात् बहुत समय बाद फल देने वाले समझ, इसलिए इनसे इस समय कोई दोष नहीं होगा, इनका फल पंचम

काल में होगा ।

इति स्वप्नफलान्यस्माद् बुध्वा वत्स यथा तथा ।
धर्मे मतिं दृढं धत्स्वविश्वविघ्नोपशान्तये ॥ 81 ॥

हे वत्स ! इस प्रकार मुझसे इन स्वप्नों का यथार्थ फल जानकर तू समस्त विघ्नों की शांति के लिए धर्म में अपनी बुद्धि कर ।

इत्याकर्ण्य गुरोर्वाक्यं स वर्णाश्रमपालकः ।
सन्देहकर्दमापायात् स प्रसन्नमधान्मनः ॥ 82 ॥

वर्णाश्रम की रक्षा करने वाले भरत ने गुरुदेव के उपर्युक्त वचन सुनकर सन्देह रूपी कीचड़ के नाश होने से अपना चित्त निर्मल किया ।

भूयोभूयः प्रणम्येशं समापृच्छय पुनः पुनः ।
पुनरावृते कृच्छात् स प्रीतो गुर्वनुग्रहात् ॥ 83 ॥

वे भगवान् को बार-बार प्रणाम कर तथा बार-बार उनसे पूछकर गुरुदेव के अनुग्रह से प्रसन्न होते हुए बड़ी कठिनाई से वहाँ से लौटे ।

ततः प्रविश्य सातंकपुरमाबद्धतोरणम् ।
केतुमालाकुलं पौरैः सानन्दमभिनन्दिनः ॥ 84 ॥
शान्तिक्रियामतश्चक्रे दुःस्वप्नानिष्टशान्तये ।
जिनाभिषेकसत्पात्रदानाद्यैः पुण्यचेष्टितैः ॥ 85 ॥

तदनन्तर नगर के लोग आनन्द के साथ जिनका अभिनन्दन कर रहे हैं ऐसे उन महाराज भरत ने जिसमें जगह-जगह तोरण बांधे गये हैं और जो पताकाओं की पंक्तियों से भरा हुआ है ऐसे अयोध्या नगर में प्रवेश कर खोटे स्वप्नों से होने वाले अनिष्ट की शांति के लिए जिनेन्द्र देव का अभिषेक करना, उत्तम पात्र को दान देना, आदि पुण्य क्रियाओं से शांति कर्म किया ।

देव, शास्त्र, गुरु की सेवा, संसार से सदा भयभीत रहना तथा सम्यक्त्व वर्धिनी क्रिया पुरुषों के पुण्यबन्ध के लिये हैं ॥

वैराग्य से युक्त, ज्ञान के अभ्यास आदि में तत्पर और सब जीवों की दया से युक्त चित्त जीवों को पुण्य उत्पन्न करता है ॥ (लेखक की – 'पुण्य-पाप मीमांसा' से)

5 भरत चक्रवर्ती की मुनिभक्ति

महाराज भरत जिस प्रकार प्रजा का पालन करते हैं, उसी प्रकार रत्नत्रय-धर्म-पालक साधुओं की सेवा करने में भी वे दत्तचित्त रहते हैं । "प्रतिनित्य साधुओं को आहार दिये बिना मैं भोजन नहीं करूँगा ।" ऐसी उनकी कठिन प्रतिज्ञा है । इसलिए राजसभा से बाहर आकर वे मुनियों को पड़गाहन (प्रतिग्रहण) करने के लिये तैयारी करने लगे। अनन्तर सम्राट मुनियों की मार्गप्रतीक्षा करने के लिए तैयार हुए ।

मुनियों की चर्या का समय जानकर वे राजमहल के द्वार की ओर चले । उन्होंने शरीर के समस्त राजचिह्नों को उतारलिया । राज्य शासन के योग्य वस्त्राभूषणों को यद्यपि उसने उतार लिया तो क्या उनकी सुन्दरता में कमी हुई ? नहीं । शारीरिक श्रृंगार से रहित होकर वे द्वार-प्रतीक्षा के लिये चले । छत्र, चमर, खड्ग, पादरक्षा आदि राजचिह्नों की अब उनको आवश्यकता न थी । अब तो सम्राट भरत पात्रदान की अपेक्षा करने वाले एक सामान्य श्रावक के समान हैं ।

पात्रदान की प्रतीक्षा के लिये जाते समय उनके बाँये हाथ में अक्षत, पुष्प आदि मंगल द्रव्य व दाहिने हाथ में जल का कलश था । उनकी कड़ी आज्ञा थी कि मेरे साथ कोई भी नहीं आये और न कोई मुझे मार्ग में नमस्कार ही करे । निधि की अपेक्षा रखने वाला कोई व्यक्ति जिस प्रकार उस निधि की पूजा कर पश्चात उसे लाने के लिये जाता है, उसी प्रकार भरत चक्रवर्ती भी तपोनिधियों को लाने के लिये जा रहे हैं । राजा के सामने सेवक को, गुरु के समक्ष राजा को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये, यह बात राजनीतिज्ञ भरत अच्छी तरह जानते थे ।

दान देना, पूजा करना ये गृहस्थों के कर्त्तव्य हैं । यह कार्य परहस्त से होना उचित नहीं है, ऐसा समझकर सम्राट स्वयं ही उस कार्य के लिये जा रहे थे ।

जिस समय वे आगे जा रहे थे, उस समय उनका अनुगमन करने वाले लोगों को पीछे रोक दिया गया था । फिर भी भरत महाराज के शरीर की सुगन्ध से मुग्ध हुए भ्रमर उनके पीछे-पीछे झुण्ड के झुण्ड आने लगे । भरत ने उनको भी बहुत कहा कि मेरे साथ चलने की आवश्यकता नहीं, परन्तु फिर भी वे भ्रमर नहीं रुके । ठीक ही बात तो है । मनुष्यों के कान हैं अतः उन लोगों ने मेरी आज्ञा सुन ली, परन्तु इन भ्रमरों के कान नहीं हैं । ये चतुरिन्द्रिय प्राणी हैं, इसिलये इनको रोकने से कोई प्रयोजन

नहीं है, ऐसा समझकर वे चुपचाप चले । अन्त में किसी प्रकार मार्ग तयकर भरत महाराज राजमहल के बहिर्मार्ग में आकर खड़े हो गये।

उन्होंने पूजन सामग्री व जलकलश को नीचे रख दिया है । अब वे साधुओं की प्रतीक्षा बहुत उत्सुकता के साथ कह रहे हैं । उस समय उनकी शोभा अपार थी। प्रतीत होता था कि कहीं अयोध्या नगर की शोभा देखने के लिये स्वयं देवेन्द्र ही कहीं आकर तो नहीं खड़ा हुआ है ।

भरतेश्वर बड़ी चिन्ता में निमग्न हैं । उनके मन में यह चिन्ता लग रही है कि मैं इस संसार -समुद्र को पार कर कब मुक्ति पाऊँगा ?

उस राजमहल के इधर-उधर से तीन बड़े-बड़े राजमार्ग तीन दिशाओं में गये हुये थे । भरत महाराज उन तीनों मार्गों की तरफ पुन: पुन: देखकर शान्त भाव से मुनियों की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

जिस प्रकार कुमुदिनी चन्द्रमा की प्रतीक्षा करती है उसी प्रकार महाराज भरत मुनियों की इच्छा कर रहे हैं । कभी तो चर्मचक्षु से मार्ग की ओर देख रहे हैं तो कभी ज्ञानदृष्टि से शरीर स्थित आत्मा का निरीक्षण कर रहे हैं । भीतर आत्मा की और बाहर से मुनियों के मार्गको देखते समय उनके कार्य में तनिक भी प्रमाद नहीं हो रहा है।

चारों ओर से स्तब्धता छाई हुई है । राजमहल से लेकर बाहर तक कोई हल्ला नहीं है, क्योंकि सब कोई जानते थे कि यब भरत चक्रवर्ती के मुनिदान (आहार दान) का समय है । कुछ सेवक आस-पास में छिपकर दानविधि को देखने के लिये बैठे हैं । भरत उनको नहीं देख रहे हैं । सम्भवत: अपनी चर्या से यह बात बतला रहे हैं कि यद्यपि सब लोक मुझे देख रहे है तो भी मैं उनसे अलिप्त हूँ । इसलिये ही तो वे एकाकी खड़े हैं । उस समय भरत इस प्रकार प्रतीत होते थे मानो कोई आत्मविज्ञानी पंचेन्द्रियों से युक्त होने पर भी उनसे अलिप्त हैं । उस समय उनके चित्त में निर्मल योगियों को दान देने के सिवाय भोजन आदि करने की कोई चिन्ता नहीं है ।

उस दिन उस नगरी में चर्या के लिये बहुत से योगीराज आये थे, परन्तु रास्ते में ही बहुत से श्रावकों ने उनका प्रतिग्रहण (पड़गाहन) कर लिया था, इसलिये राज प्रासाद तक कोई नहीं पहुँच सके । अब तो भरतचक्रवर्ती बड़ी चिन्ता में मग्न है, कभी दाहिनी ओर कभी बांयी ओर देखते हैं परन्तु किसी जिनरूपधारी को न देख कर फिर चिन्तामग्न हो जाते हैं । बहुत दूर तक भी दृष्टि पसार कर देखते हैं फिर भी कोई नहीं दिख रहा है ।

क्या आज पर्वोपवास का दिन है ? आज कौन सी तिथि है ? नहीं, आज तो पर्व का दिन नहीं है । तब फिर क्यों नहीं मुनिराज आये ? क्या कारण है कि मेरे महल की ओर तपोनिधि नहीं आते ? कहीं किसी दुष्ट हाथी, घोड़े आदि ने तो उनको कष्ट नहीं दिया ? क्या किसी दुष्ट ने उनकी निन्दा तो नहीं की ?

मेरे राज्य में यदि किसी ने मुनिनिन्दा की तो मेरे राज्य की इतिश्री हो गई ? फिर मेरे अस्तित्व से क्या प्रयोजन ? ऐसी अवस्था में मुझे षट्खण्ड का अधिपति कौन कहेगा ? नहीं, नहीं, मेरे राज्य में मुनिनिन्दा करने वाले मनुष्य नहीं हैं तो फिर आज मुनियों का आवागमन क्यों नहीं होता ?

हाँ ! आज मुनियों की सेवा करने का भाग्य नहीं है ? सचमुच में एक दिन भी रिक्त न होकर मुनियों को आहार-दान देना बड़े सौभाग्य की बात है । जिस प्रकार द्वीप में जाने वाले जहाज में अनेक प्रकार की सामग्री भरकर भेजी जाती है, उसी प्रकार मोक्ष जाने वाले मुनियों के करतल पर अन्न को रखकर भेजना प्रत्येक श्रावक का कर्त्तव्य है ।

आत्मा और शरीर को भिन्न समझकर ध्यान करने वाले योगी को अपने हाथ से आहार देने का सौभाग्य क्या प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त होता है ?

रत्नत्रय के धारक, परमवीतरागी, तपस्वी आत्मामृत को तो आत्मा को अर्पण करते हैं एवं भव्यात्माओं के द्वारा दिये हुए अन्न को शरीर को देते हैं । ऐसे योगियों को आहार देने वाला गृहस्थ क्या धन्य नहीं है ?

चिद्गुणान्न को आत्मा के लिये व पुद्गलान्न को पौद्गलिक शरीर के लिये देने वाले सद्गुरुओं को आहार दान दें, तो इससे सद्गति होने में क्या कोई सन्देह है ? ब्रह्म नाम आत्मा का है । ब्रह्म से उत्पन्न अन्न को ब्रह्मान्न कहते हैं । पर पदार्थो से उत्पन्न अन्न को शुद्धान्न कहते हैं ।

सुक्षेत्र में बोया हुआ बीज व्यर्थ नहीं जाता है । उनमें अंकुरोत्पादन होकर फल आदि अवश्य उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार मोक्षगामी के हाथ में दिया हुआ हुआ आहार व्यर्थ नहीं जाता है । उसका इहलोक में ही प्रत्यक्ष फल मिलता है ।

सीप में पड़ी हुई स्वाति नक्षत्र की बूंद क्या व्यर्थ हो जाती है ? नहीं । वह तो उत्तम मोती बन जाती है । इसी प्रकार ऐसे सद्गुरुओं को दिया हुआ आहारदान व्यर्थ नहीं जाता है । उससे मुक्ति भी प्राप्त होती है ।

भोजन नहीं ग्रहण करने वाली मूर्ति की द्रव्य से पूजा करना उपचार भक्ति है,

भोजन करने वाले जिनरूपधारी गुरुओं को आहारदान देना मुख्य भक्ति है । इस प्रकार भरत चक्रवर्ती अनेक विचारों में मग्न हो गये, परन्तु अभी तक कोई मुनिराज नहीं आये । वे और भी चिन्ता में पड़ गये ।

क्या कारण है आज मुनीश्वरों का आवागमन नहीं हो रहा है ? इतने में एक आश्चर्यकारक घटना हुई । आकाश में एक अद्‌भुत प्रकाश दिखने लगा । इधर-उधर न देखकर उस कान्ति की ओर ही भरत महाराज देखने लगे । अभी वह कान्ति दूर से दिख रही है । इससे चक्रवर्ती की उत्सुकता बढ़ने लगी ।

यह क्या है ? एक दूसरे सूर्य के समान यह अद्‌भुत प्रकाश क्या है ? जिन! जिन ! यह क्या है ?

इतने में वह प्रकाश एक स्थान पर दो रूप में दिखने लगा । भगवन ! यह एक था अब दो हो गये । पहले सूर्य के समान दिख रहा था । अब सूर्य व चन्द्रमा के समान दिख रहा है । इतना विचार कर ही रहे थे कि वे दोनों प्रकाश पास-पास में आ गये ।

अहा! यह चारणमुनियों का शरीर है और अन्य वस्तु नहीं है, ऐसा उन्होंने निश्चय किया ।

सूर्य के विमान में विद्यमान जिन प्रतिमाओं का अपने प्रासाद से दर्शन करने वाले चक्रवर्ती को इन मुनियों को पहचानने में इतनी देर न लगती परन्तु उस दिन आकाश मेघ से घिरा हुआ था, इसलिए उसने अच्छी तरह विचार कर निर्णय किया।

चिन्ता दूर हो गई । हर्ष से शरीर रोमांचित हो उठा । अहा ! मेरा तो भाग्योदय हुआ ! ऐसा कहकर पूजा के द्रव्य को हाथ में लेकर वे नीचे उतरे । इतने में ही वह चन्द्रमण्डल व सूर्यमण्डल इस धरातल में उतरे ।

गरीब मनुष्य निधियों को देखकर हर्ष से नाच उठता है । इसी प्रकार भरत चक्रवर्ती उन मुनिनिधियों को देखकर अत्यन्त आनन्दित हो उनकी सेवा में उपस्थित हुए ।

चक्रवर्ती ने बड़ी भक्तिपूर्वक कहा - ''भो मुनिराज ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ !'' यह सुनते ही वे दोनों महाराज वहाँ खड़े हो गये । तब भरतराज ने अपने हाथ के गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि से दर्शनाञ्जली देकर तदनन्तर भावशुद्धि से जलधारा दी । पश्चात अत्यन्त भक्तिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा देकर उनको साष्टांग नमस्कार किया । तब कुछ लोग इधर उधर से आकर जय-जयकार शब्द करते हुए कहने लगे कि चक्रवर्ती भरत यहाँ खड़े

ध्यान कर रहे थे, इसलिये उस ध्यान के बल से यो दोनों मुनि आ गये हैं ।

भरत चक्रवर्ती जिन निधि को ले जाने को यहाँ आये थे, वह निधि अब उनको मिल गई है । अब वे उस निधि को अपने महल में बहुत सावधानी से ले जा रहे हैं।

जिस प्रकार कामदेव हार कर उन मुनियों से प्रार्थना कर अपने घर ले जाता हो, उसी प्रकार वह नरलोक का कामदेव उनको अपने महल में ले जा रहा है ।

जहाँ मुनियों को सीढ़ियों से उतरना पड़ता था वहाँ चक्रवर्ती उनको अपने हाथ का सहारा देता था और जब वे ऊपर चढ़ते थे, तब भी बहुत भक्ति से हाथ लगाते हुए कहने लगता था- स्वामिन! आप लोग आकाश में बिना सहारे चलने वाले हैं आपको अवलम्बन की आवश्यकता नहीं है । यह केवल हमारा उपचार है ।

यह भी जाने दीजिए । देखिए तो सही, जब हमारा महल इतना वक्र है तब हमारा हृदय कितना वक्र होगा ? हमारा महल वक्र, हमारा मन वक्र, फिर भी आप इस विषय पर कृपा करके यहाँ पधारे हैं । इससे अब हमारा मन व महल दोनों सीधे हो गये ।

भरत चक्रवर्ती के धर्म विनोद को सुनते -सुनते मुनिराज मन ही मन प्रसन्न होने लगे । परन्तु कुछ बोले नहीं क्योंकि उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा थी कि भोजन करने से पहले किसी से नहीं बोलेंगे । फिर भी मन में भरत की भक्ति से प्रसन्न होकर जा रहे थे।

इस प्रकार भय और भक्ति से जिस समय उन योगियों को वह चक्रवर्ती महल में ले गया तब चक्रवर्ती की रानियाँ सामने आई। मुनियों को देखते ही भक्ति से सबकी सब रोमांचित हो गई । तत्क्षण, आरती उतारी । फिर सबने मुनिराजों को साष्टांग नमस्कार किया । जिस प्रकार कामदेव दिगम्बर तपस्वियों के प्रति स्पर्धा करके हार गया हो फिर वह उसी हार के कारण अपने महल में लाकर अपनी स्त्रियों से भी हार स्वीकार करा रहा हो और इसीलिये स्त्रियाँ भी उन मुनिराजों के चरणों में पड़ती हों। इस प्रकार उस समय भरत चक्रवर्ती की शोभा प्रतीत हुई । उस समय महल में एक को नहीं, सबको एक उत्सव का दिन प्रतीत हुआ । उत्सव दिन भी कैसा ? विवाहोत्सव के समान हर्ष था । इसी आनन्द में उन सतियों ने किन्नरवीणा आदि लेकर अन्न दान की महिमा को गाना प्रारम्भ कर दिया ।

वे मुनिराज जब महल के अन्दर जा रहे थे स्त्रियाँ दोनों तरफ से चामर ढार रही थीं । सेवक के घर स्वामी आये, तो जिस प्रकार सेवक अनेक प्रकार से भक्ति

करता है, उसी प्रकार भरत चक्रवर्ती उन तपस्वियों के अपने महल में आने पर अनेक प्रकार से अपनी स्त्रियों से युक्त होकर उनकी भक्ति करके अपने को भाग्यशाली समझते थे ।

चक्रवर्ती ने हमको नमस्कार किया , इसका उन मुनिराजों को कोई अभिमान नहीं आया और न उन सुन्दरियों को देखकर ही मन में कोई विकार उत्पन्न हुआ । वे अपने मन को आत्मा में दृढ़ कर चक्रवर्ती के साथ गये ।

जिन योगियों ने अपने शरीर को भी तुच्छ समझ कर आत्मा की ओर चित्त लगाया है भला कुछ बाह्य पदार्थों को देखकर उनका मन विचलित हो सकता है ?

तदनन्तर उन योगियों के पादकमलों का प्रक्षालन कर अमृत-गृह में पदार्पण कराया । उस घर में कोई अन्धकार नहीं था । लोगों को ऐसा मालूम होता था कि कहीं यह सूर्य का जन्म स्थान तो नहीं है ?

भरतेश्वर ने वहाँ पर उन योगियों को ऊँचा आसन दिया, फिर अपनी धर्मपत्नियों से युक्त होकर भक्ति से उनकी पूजा की तदनन्तर भक्ति पूर्वक आहार दान दिया ।

दातारों में चक्रवर्ती भरत उत्तम था और पात्रों में वे चारणमुनीश्वर उत्तम थे। इसीलिये उत्तम पात्रों को सिद्धान्तशास्त्रों में प्रणीत विधि के अनुसार उत्तम दान दिया।

दान के समय बारह घण्टा, वाद्य आदि मंगल शब्द होने लगे क्योंकि चक्रवर्ती के आहार दान संभ्रम सामान्य नहीं है ।

इस जगत में जितने उत्तम पदार्थ हैं वे सब भरत चक्रवर्ती के महल में हैं । इसलिये उनको किस बात की कमी हो सकती है ।

उन ज्ञान शील तपस्वियों को उस चक्रवर्ती ने अमृतान्न देकर तृप्त किया । सचमुच में उस समय अनेक प्रकार के भक्ष्य, खीर, शाक, पाक, फल आदि को सोने के बरतनों से निकालकर देते हुये चक्रवर्ती कल्पवृक्ष ,कामधेनु व चिन्तामणि को भी मात कर रहे थे ।

उस समय भरत चक्रवर्ती की रानियों के परोसने की युक्ति और उन अमृत ग्रासों को मुनिराजों के हाथ में रखने की युक्ति सचमुच दर्शनीय थी ।

दोनों मुनिराज किसी भी अभिलषित पदार्थों की ओर संकेत न करके भरत ने जिस दिव्य अन्न को दिया उस भोजन से तृप्त हो गये ।

जिन मुनिराजों के तप: प्रभाव से नीरस अन्न भी हाथ में आने पर सरस बन

जाता है तब चक्रवर्ती के द्वारा दिये हुये सरस अन्न किस प्रकार हुये, यह बात अवर्णनीय है ।

स्वर्ग के देवगण जिस अमृत का सेवन करते हैं, उसके समान अपने-अपने लिये निर्मित आहार को अपनेहाथ में षट्खण्डाधिपति ने मुनिराजों को समर्पण किया उसका क्या वर्णन करें ।

चक्रवर्ती ने भुक्ति से उन चारणमुनियों को तृप्त किया । इतना ही नहीं, भक्ति से भी तृप्त किया तथा भुक्ति और भक्ति से मुक्ति पथ की युक्ति को पा लिया । सप्तविध, दातृगुण व नवविध भक्ति में युक्त होकर जब चक्रवर्ती ने उन योगियों को आहारदान दिया तब उन्हें तृप्ति हो गई ।

उन योगियों ने जिस समय भोजन समाप्ति की, उस समय सम्भवत: उन लोगों ने यह विचार किया होगा कि परमात्मा का स्वात्मानन्द ही भोजन है । भोजन शरीर के लिये है । आहारादि सेवन करना शरीर स्थिति के लिये कारण है, इसीलिये शरीर को विशेषतया हृष्ट-पुष्ट करना ठीक नहीं है । इस प्रकार हंस क्षीर-नीर न्याय से समझकर उन्होंने भोजन को पूर्ण किया ।

वद्ध पल्यंकासन में विराजमान होकर चारणयोगियों ने मुख-शुद्धि की । तदनन्तर हस्तप्रक्षालन कर सिद्ध भक्ति के अनन्तर आँख मीचकर उन्होंने आत्मदर्शन किया ।

इतने में घण्टाध्वनि रुक गई । चारों ओर से रानियाँ खड़ी हो गई । योगियों की निश्चल ध्यान मुद्रा को देखकर चक्रवर्ती मन ही मन हर्षित होने लगे । अभी उन मुनियों की देह जरा भी नहीं हिल रही है । वे पत्थर की मूर्ति के समान निश्चल हैं। वे सिद्धान्तोक्त मंत्रों का जप करते हुये आत्मा का बहुत दृढ़ता के साथ निरीक्षण कर रहे हैं ।

आँखों को खोलकर जब उन्होंने आनन्द से राजा की ओर देखा तब भरत ने बहुत उत्साह व भक्ति से नमोस्तु किया ।

"**अक्षयं दानफलमस्तु ते**" इस प्रकार चन्द्रगति मुनि ने और "**निर्मलात्मसिद्धिरस्तु**" इस प्रकार आदित्य गति ने उनको आशीर्वाद दिया ।

उन चारणयोगियों के पवित्र आशीर्वाद को पाकर उस चक्रवर्ती के हृदय में कितना आनन्द हुआ यह परमात्मा ही जाने । उस समय वह इस प्रकार नाचने लगा मानो मुक्ति ही उसके हाथ में आ गई हो । ठीक ही है । सत्पात्रों की प्राप्ति में किसे

हर्ष नहीं होगा ? उसी समय भरत चक्रवर्ती की रानियों ने भी मुनियों को नमोस्तु किया । मुनियों ने उन सबको गीर्वाण भाषा में आशीर्वाद दिया ।

उस समय भरतेश की दानचर्या से देव भी प्रसन्न हुए । उन्होंने इस हर्ष में नर्तन किया । आश्चर्य है कि उस समय पाँच घटनाओं के द्वारा देवों ने भूलोक को चकित कर दिया ।

सहसा किसी सुगंधित फूलों से बगीचे में प्रवेश किये के समान शीत व सुगन्धयुक्त पवन बहने लगी ।

उस समय अयोध्येश भरत के महल में स्वर्ग से पुष्प वृष्टि होने लगी । स्वर्ग से देवगण भरत के महल पर रत्नावृष्टि व सुवर्ण वृष्टि करने लगे । देवगण हर्ष से अनेक प्रकार की वाद्यध्वनि करने लगे । आकाश में देव खड़े होकर भरत चक्रवर्ती की जय-जयकार करते हुए प्रशंसा करने लगे ।

यह दान उत्तम है, दाता उत्तम है , और पात्र भी उत्तमोत्तम है ।

हे भरत ! हमने स्वर्ग लोक में उत्पन्न होकर स्वर्गीय सुख का अनुभव किया तो क्या हुआ । तुम्हारे समान पात्रदान करने का भाग्य हमें कहाँ है ? हमने व्रत से, तप से व दान से यह स्वर्ग प्राप्त किया । यह सत्य है । परन्तु खेद है कि यहाँ व्रत नहीं, तप नहीं व दान देने का अधिकार भी नहीं है । हे भरत ! तुम्हारे जैसा भाग्य हमें कहाँ ?

अन्न देने की शक्ति तो हममें भी है । परन्तु कदाचित् हम आहार दान करने का विचार करें तो हम व्रती नहीं हैं । अव्रती होने से हम दान देंवे तो मुनिजन उसे ग्रहण नहीं करेंगे ।

हे राजन ! हम जिनेन्द्र की पूजा करते हैं परन्तु वह केवल उपचार है । क्योंकि उनकी उदराग्नि नहीं है ? किन्तु इन मुनियों की उदराग्नि है । उसकी उपशांति करने का अधिकार हमें नहीं , तुम्हें है, इसलिए तुम धन्य हो ।

भूलोक में आहारदान देने वाले बहुत से राजा मिल सकते हैं परन्तु इनमें दान देने की युक्ति नहीं । कदाचित् युक्ति हो तो भक्ति नहीं । युक्ति व भक्ति से युक्त मुक्ति साधक दाता तुम ही हो ।

जो सौभाग्य व सम्पत्ति मनुष्यों में मद उत्पन्न करता है, इस मद ने तुम्हें स्पर्श भी नहीं किया है । तुम्हें उस भोग से मूर्च्छा नहीं आई है । इस तरह अनेक प्रकार से देवों ने चक्रवर्ती भरत की महिमा गाई । ठीक ही तो है धर्मात्माओं के धार्मिक

गुण पर मुग्ध होकर उनकी प्रशंसा करना धार्मिक पुरुषों का जाति चिह्न है ।

''धर्मसाम्राज्य का चिरकाल पालन करो ।''

इस प्रकार देववाणी करके देवगण अन्तर्ध्यान हुये ।

आद्य चक्रवर्ती के दान की महिमा अपार है । उपर्युक्त पंच आश्चर्य रूप घटनायें भरतेश्वर के दान के प्रत्यक्ष प्रभाव को सूचित करती हैं ।

''जिन शरण'' शब्द का उच्चारण करते हुये मुनिगण वहाँ से गमन करने को उठे । उसी समय महाराज भरत भी ''मेरी आप ही शरण है'' ऐसा कहकर उनकेपीछे ही उठकर चलने लगे ।

भरत को उन मुनिराजों ने आज्ञा दी कि ''तुम ठहर जाओ, अब हम जाते हैं'' परन्तु भरत ने उनसे सविनय निवेदन किया ''आप पधारिये '' । ऐसा कहकर एकदम अपने दो रूप बना लिए एवं दोनों रूपों से दोनों मुनिराजों को हाथ का सहारा देकर उनके साथ जाने लगा ।

चार आठ गज जाने के बाद मुनियों ने फिर कहा ''अब तो ठहर जाओ'' स्वामिन् ! थोड़ी सेवा और करने दीजियेगा । ''आप पधारिये'' भरत ने कहा ।

थोड़ी दूर जाने के बाद फिर मुनियों ने कहा कि ''अब आगे नहीं आना, ठहर जाओ । भगवन ! आपको जो उचित है कि भक्तों को आगे बुलाकर उद्धार करें परन्तु आप लोग हमारा तिरस्कार करके आगे न आने का आदेश कर रहें है । क्या यह आपको उचित है ?'' इस प्रकार भरत ने विनोद से कहा ।

भरत का विनोद देखकर मुनिगण मन में प्रसन्न होकर जा रहे थे । यह भगवान का पुत्र ही तो है ऐसा समझकर मन में विचार करते हुये वे जा रहे थे ।

''राजन ! भोजन का विलम्ब होता है । जाओ, अब तो जाओ, ऐसा कहकर मुनि ठहर गये ।'' परन्तु भरत वहाँ से भी जाने को तैयार नहीं हुआ । वह कहने लगा कि भगवन ! चलिये कुछ दूर और, ऐसा कहकर भक्ति से आगे बढ़ा ।

इस प्रकार उन मुनियों के साथ वह चक्रवर्ती अन्तिम द्वार पर्यन्त गया । वहाँ से भी उनको छोड़कर आने की इच्छा नहीं थी ।

ठीक है । जो सतत् आत्मानुभव करते हैं ऐसे योगीरत्नों को छोड़कर कौन मोक्षगामी लौटना चाहेगा ?

अब भी यह पीछे नहीं जाता है ऐसा समझकर मुनियों ने कहा कि ''अब भगवान आदिनाथ की शपथ है, ठहर जाओ'' ऐसा कहकर ठहराया । भरत ने भी

भक्तिपूर्वक उन तपस्वियों को नमस्कार कर साथ ही अपने दोनों रूपों को एक बना लिया ।

वीतरागी तपस्वियों ने भी उसको आशीर्वाद दिया एवं आकाश मार्ग से विहार कर गये । भरत भी उनकी ओर आँख लगाकर बराबर देखने लगा ।

दोनों मुनिवर आकाश मार्ग में जाते समय चन्द्र और सूर्य के समान मालूम होते थे, ठीक है । वे नाम से भी चन्द्रगति और आदित्य गति थे ।

वे जब तक दृष्टिपथ में आ रहे थे, तब तक चक्रवर्ती खड़े होकर बड़ी उत्सुकता के साथ उनको देखते रहे । तदनन्तर निराश होकर वहाँ से महल की ओर चले ।

सेवकों ने आकर सोने की खड़ाऊ लाकर दी । इधर उधर से आकर चामरधारी चामर दुराने लगे । इस प्रकार चक्रवर्ती राज वैभव के साथ महल की तरफ चले ।

राजाधिराज चक्रवर्ती मुनिदान के अनन्तर महल की ओर आने लगे । उस समय सुन्दर दुपट्टा धारण किये हुये वे ऐसे चलते थे मानो कोई हाथी का बच्चा चल रहा हो । उस समय दुपट्टा हिलाते हुए वे चलने लगे । पैरों में सोने की खड़ाऊँ पहने हुये तथा अपनी प्रवीणता को दिखाते हुए वे धीरे-धीरे लीलापूर्वक चलने लगे ।

मेरे घर आज उत्कृष्ट पात्र का दान हुआ है, इस प्रकार मन में आनन्दित हो सेवकों का आदर सत्कार करते हुए उन्होंने महल में प्रवेश किया । तदनन्तर एक नौकर को बुलाकर कहा "जाओ, उस सोने की राशि में से सोना निकालकर पुरवासी गरीबों को तथा भिक्षुकों को यथेच्छा दे दो" इस प्रकार आज्ञा देते हुए महल के अन्दर गये ।

इधर उनकी रानियाँ उनके गुणों की स्तुति करती हुई तथा दान में हुए अतिशयों से हर्ष मनाती हुई पति के आगमन की प्रतीक्षा करने लगीं । इतने में अपने सामने पति की चमकती हुई मुख की कांति को देखकर चक्रवर्ती की सभी स्त्रियाँ परस्पर बातचीत करने लगीं ।

आज़ राजाधिराज (स्वामी का) भरत चक्रवर्ती का मन बड़ा प्रफुल्लित है । ऐसा मालूम होता है कि इनको कोई उत्तम वस्तु प्राप्त हुई है ।

फिर आपस में कहने लगीं - बहिन ! तुम उनके मुख को तो देखो तब ज्ञात होगा कि मेरा कहना सच है या झूठ । इस प्रकार वे परस्पर कहने लगीं । कोई कोई कहती है कि तुम्हारी बात सच है । झूठ नहीं है । इस प्रकार हम लोगों को भी देखने में आता है । ऐसा कहती हुई सबकी सब आनन्दित होती हैं । कोई-कोई कहती

हैं कि अपने आप परस्पर में संदेहास्पद बात करने में कुछ प्रयोजन नहीं है, अत: चलो स्वामी के पास जाकर अपने संदेह को दूर करें ।

इतने में सभी स्त्रियाँ भरत चक्रवर्ती के पास जाकर पूछने लगीं- हे नाथ ! आपके मुख की प्रसन्नता देखकर हमारे मन में जो भाव उत्पन्न हुआ है, वह सच है या झूठ ? तब उन्होंने कहा- सच है। मेरे हृदय के भावों को तुम लोगों के सिवाय और कौन जान सकता है, यह कहकर भरतेश्वर ने कहा कि चलो अब हम सब भोजन करें ।

तदनन्तर प्रादप्रक्षालन करके जब वे भोजन करने गये तब अपने योग्य ही भोजन की तैयारी देखकर वहीं खड़े होकर सोचने लगे आज बहुत देर हो गई । अत: सभी रानियों के साथ ही भोजन करना ठीक है । यह सोचते हुए अलग-अलग नामों से सबको प्रेमपूर्वक पुकारने लगे । सबको बुलाकर कहने लगे कि आज हम सब साथ ही बैठकर भोजन करेंगे ।

इतने में सभी स्त्रियाँ आकर हाथ जोड़कर कहने लगीं - हम लोगों का नियम है कि पति के भोजनान्तर ही हम भोजन करेंगी । अत:कृपा कर पहले आप भोजन कीजिए ।

सभी रानियाँ परस्पर मुख देखकर विचार करने लगीं । सभी के विचार एक प्रकार के नहीं होते हैं । अत: वे सभी आपस में छोटी बहिन बड़ी बहिन से कहने लगी दीदी! हम स्वामी की आज्ञापालनार्थ साथ बैठकर भोजन करेंगी तो इसमें दोष तो नहीं होगा ? इस प्रकार की बात सुनकर एक ने कहा कि जिस प्रकार स्वामी मुनिराज को आहार दिये बिना आहार नहीं करते, उसी परकार हम भी अपना धर्म क्यों छोड़े ? पति को भोजन कराने के पश्चात भोजन करने वाली स्त्री स्वर्गस्वामिनी होती है । अत: एक साथ भोजन करना ठीक नहीं है ।

तत्पश्चात् भरत चक्रवर्ती भोजन करने लगे, भोजन करने के बाद भी रानियों ने भोजन नहीं किया, तब भरत चक्रवर्ती उनकी तरफ जिज्ञासा दृष्टि से देखने लगे, तब पास में बैठी हुई रानी के कान में धीरे से कुछ कह सुनाई तब चक्रवर्ती ने एक रानी को इशारा करके अपनी थाली से कुछ मिष्टान्न सभी रानियों की थाली में परोसने के लिये कहा । जब एक रानी ने पतिदेव भरत चक्रवर्ती के शेषान्न को परोस दिया तब सम्पूर्ण रानियाँ अपनी प्रतिज्ञा पूरी हुई जानकर भोजन करने लगीं । इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में चक्रवर्ती तक बिना आहार दान दिये भोजन नहीं करते

थे तथा स्त्रियाँ भी पति के पहले भोजन नहीं करती थीं । यह प्राचीन भारत की उज्ज्वल एवं श्रेष्ठ परम्परा थी । परन्तु आज दुर्भाग्य के वश: गृहस्थ लोग बिना मुनि को आहार दिये भोजन करते हैं तथा स्त्रियाँ भी पति के पहले भोजन करती हैं । महान् चक्रवर्ती भरत की इस घटना से गृहस्थों को बहुत कुछ सीखना है, चक्रवर्ती होते हुए भी जब तक मुनि को आहार नहीं देते थे तब तक स्वयं आहार नहीं करते थे तथा मुनि को आहार दान दिये बिना अपने को पापी समझते थे । परन्तु आज के गृहस्थ मुनियो को आहारदान कौन दे, उनकी सेवा वैयावृत्ति कौन करे, ऐसे विचारों से दुखी होते एवं रोते हैं ।

भरत चक्रवर्ती गृहस्थ में रहते हुए षट्खण्ड की व्यवस्था करते हुए समय निकालकर अपने गृहस्थ धर्म को सुचारु रूप से पालन करते थे परन्तु आज गृहस्थ के पास छह-खण्ड का मकान नहीं होते हुए भी धन वैभव भोग में इतना आसक्त है कि मंदिर जाना, स्वाध्याय करना, गुरुओं का उपदेश सुनना, आहार दानादि देने के लिए न समय है और न मन है । भोगवादी आज के आधुनिक जैन लोग भरत का उदाहरण देते हुए बतलाते हैं कि "भरत जी घर में थे वैरागी" और स्वयं को भरत के समान तुलना करने में अघाते नहीं परन्तु कभी भी भरत के समान गृहस्थ धर्म पालन करने के लिये तन,मन एवं समय का सदुपयोग करते हैं क्या ? भोग-भोग करते हुए स्वयं को वैरागी बतलाने वाले भरत का उदाहरण देते हैं, परन्तु भरत के त्याग और जीवन के अनुसार अपना जीवन ढालते हैं क्या ? यह स्वयं विचार कीजिए। भरत चक्रवर्ती का गृहस्थ धर्म भी कितना धर्म से ओतप्रोत था, उसका वर्णन आदि पुराण में "श्रीमद् जिनसेन" स्वामी ने किया है । (अध्याय छ: में यह वर्णित है)

पुरुषार्थहीन होकर बैठे रहने से भाग्य भी बैठा रहता है । पुरुषार्थ से खड़ा होने से भाग्य भी खड़ा हो जाता है । पुरुष पुरुषार्थहीन होकर सोने से भाग्य भी सो जाता है प्रबल पुरुषार्थ से आगे बढ़ने से भाग्य भी आगे बढ़ता है इसीलिए हे पुरुषार्थी ! आगे बढ़ते चलो, बढ़ते चलो !

कलिः शयनो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठं स्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन् ॥

(लेखक की – 'भाग्य एवं पुरुषार्थ' से)

6 गृहस्थ धर्म रत भरत

दानं पूजां च शीलं न दिने पर्वण्युपोषितम् ।
धर्मश्रुतर्विधः सोऽयमग्नातो गृहमेधिनाम् ॥ 104 ॥

दान देना, पूजा करना, शील पालन करना और पर्व के दिन उपवास करना यह गृहस्थों का चार प्रकार का धर्म माना है ।

ददौ दानमसौ सद्भ्यो मुनिभ्यो विहितादरम् ।
समेतो नवभिः पुण्यैः गुणैः सप्तभिरन्वितः ॥ 105 ॥

(आ.पु.भा.IIपृ.325)

नव प्रकार के पुण्य और सात गुणों से सहित भरत उत्तम मुनियों के लिये बड़े आदर के साथ दान देते थे ।

सोऽदाद् विशुद्धमाहारं यथा योगं च भेषजम् ।
प्राणिभ्योऽभयदानं च दानरुः यै तावती गतिः ॥ 106 ॥

वे विशुद्धि आहार, योग्यतानुसार औषधि और समस्त प्राणियों के लिये अभय दान देते थे सो ठीक ही है क्योंकि दान की यही तीन गति हैं ।

जिनेषु भक्तिभावन्वंस्तत्पूजायां धृतिं दधौ ।
पूज्यानां पूजनाल्लोके पूज्यत्वमिति भावयन् ॥ 107 ॥

संसार में पूज्य पुरुषों की पूजा करने से पूज्यपना स्वयं प्राप्त होता है, ऐसा विचार करते हुये महाराज भरत, जिनेन्द्र देव में अपनी भक्ति बढ़ाते हुए उनकी पूजा कर ने में बहुत ही संतोष धारण करते थे ।

चैत्य चैत्यालयादीनां निर्माणपुरस्सरम् ।
स चक्र परमामिज्यां कल्पवृक्षपृथुप्रथाम् ॥ 108 ॥

उन्होंने अनेक जिन बिम्ब और जिन मंदिरों की रचना कराकर कल्पवृक्ष नाम का बहुत बड़ा यज्ञ (पूजन) किया था।

शीलानुपालने यत्नो मनस्यस्य विभोरभूत् ।
शीलं हि रक्षितं यत्नादात्मानमनुरक्षति ॥ 109 ॥

उनके मन में शील की रक्षा करने का प्रयत्न सदा विद्यमान रहता था जो ठीक ही है क्योंकि प्रयत्न पूर्वक रक्षा किया हुआ शील आत्मा की रक्षा करता है ।

व्रतानुपालनं शीलवृतान्युक्तान्यगृहिणाम् ।
स्थूल हिंसाविरत्यादिलक्षणानि च लक्षणैः ॥ 110 ॥

व्रतों का पालन करना शील कहलाता है और स्थूल हिंसा का त्याग करना (अहिंसाणुव्रत) आदि जो गृहस्थों के व्रत हैं वे लक्षणों के साथ पहले कहे जा चुके हैं ।

सभावनानि तान्येष यथायोगं प्रपालयन् ।
प्राजनां पालकः सोऽभूद् धैरेयो गृहमेधिनाम् ॥ 111 ॥

उन व्रतों को भावनाओं सहित यथायोग्य रीति से पालन करते हुए प्रजापालक महाराज भरत गृहस्थों में मुख्य गिने जाते थे ।

''भरत की दिनचर्या''

धार्मिकस्यास्य कामार्थचिन्ताऽभूदानुषङ्गिकी ।
तात्पर्यं त्वभवद्धर्मे कृत्स्नश्रेयोऽनुबन्धिनी ॥ 119 ॥

वे बहुत ही धर्मात्मा थे । उनके काम और अर्थ की चिन्ता गौण रहती थी तथा उनका मुख्य तात्पर्य सब प्रकार का कल्याण करने वाले धर्म में ही रहता था ।

प्रातरुत्थाय धर्मस्थैः कृतधर्मानुचिन्तनः ।
ततोऽर्थकामसंपत्तिं सहामात्यैर्न्यरूपयत् ॥ 120 ॥

वे सबेरे उठकर पहले धर्मात्मा पुरुषों के साथ धर्म का चिन्तन करते थे और फिर मंत्रियों के साथ अर्थ तथा कामरूप सम्पदाओं का विचार करते थे ।

तल्पादुत्थितमात्रोऽसौ संपूज्य गुरुदैवतम् ।
कृतमङ्गलनेपथ्यो धर्मासनमधिष्ठितः ॥ 121 ॥

वे शय्या से उठते ही देव और देवों गुरुओं की पूजा करते थे और फिर मांगलिक वेष धारण कर धर्मासन पर आरूढ़ होते थे ।

प्रजानां सदसद्वृत्तचिन्तनैः क्षणमासितः ।
तत आयुक्तान् स्वेषु नियोगेष्वन्वशाद् विभुः ॥ 122 ॥

वहाँ प्रजा केसदाचार और असादाचार का विचार करते हुये वे क्षणभर ठहरते थे, तदनन्तर अधिकारियों को अपने-अपने काम पर नियुक्त करते थे अर्थात् अपना-अपना कार्य करने की आज्ञा देते थे ।

नृपासनमथाध्यास्य महादर्शनमध्यगः ।
नृपानसंभावयामास सेवावसरकाङ्क्षिणः ॥ 123 ॥

इसके बाद सभा भवन के बीच में जाकर राजसिंहासन पर विराजमान होते तथा सेवा के लिये अवसर चाहने वाले राजाओं का सम्मान करते थे ।

कांश्चिदालोकनैः कांश्चित्स्मतैराभाषणैः परान् ।
कांश्चित्समानदानाद्यैस्तर्पयामास पार्थिवान् ॥ 124 ॥

वे कितने ही राजाओं को दर्शन से, कितनों ही को मुस्कान से, कितनों को वार्तालाप से, कितनों को सम्मान से और कितनों को ही दान आदि से सन्तुष्ट करते थे ।

तत्रयोपायनसंपत्त्या समायतान् महत्तमान् ।
वचोहराज्य संमान्य कृतकार्यान् व्यसर्जयत् ॥ 125 ॥

वे वहाँ पर भेंट लेकर आये हुए बड़े-बड़े पुरुषों तथा दूतों को सम्मानित कर और उनका कार्यपूरा कर उन्हें विदा करते थे ।

कलाविदश्च नृत्यादिदर्शनैः समुपस्थितान् ।
पारितोषिकदानेन महता समतर्पयत् ॥ 126 ॥

नृत्य आदि दिखाने के लिये आये हुए कलाओं को जानने वाले पुरुषों को बड़े-बड़े पारितोषिक देकर सन्तुष्ट करते थे ।

ततोविसर्जितास्थानः प्रोत्थाय नृपविष्टरात् ।
स्वेच्छाविहारमकरोद विनोदैः सुकुमारकैः ॥ 127 ॥

तदनन्तर सभा विसर्जन करते और राजसिंहासन से उठकर कोमल क्रीड़ाओं के साथ साथ अपनी इच्छानुसार बिहार करते थे ।

ततोमध्यदिनेऽभ्यर्णे कृतमज्जनसंविधिः ।
तनुस्थितिं स निर्वर्त्य निरविक्षत् प्रसाधनम् ॥ 128 ॥

तत्पश्चात् दोपहर का समय निकट आने पर स्नान आदि करके भोजन करते और फिर अलंकार धारण करते थे ।

चामरोत्क्षेपताम्बूलदानसंवाहनादिभिः ।
परिचेरुरुपेत्यैनं परिवाराङ्गना स्वतः ॥ 129 ॥

उस समय परिवार की स्त्रियाँ स्वयं आकर चमर डोलना, पान देना और पैर दबाना आदि के द्वारा सेवा करती थी ।

ततो भुक्तोत्तरास्थाने स्थितः कतिपयैर्नृपः ।
समं विदग्धमण्डल्या विद्यागोष्ठिरिभावयत् ॥ 130 ॥

तदनन्तर भोजनके बाद बैठने योग्य भवन में कुछ राजाओं के साथ बैठकर चतुर लोगों की मण्डली के साथ साथ विद्या की चर्चा करते थे ।

तत्र वारविलासिन्यो नृपबल्लभिकाश्च तम् ।
परिववुरूपारूढ़तारुण्यमद कर्कशाः ॥ 131 ॥

वहाँ जवानी के मद से जिन्हें उद्दण्डता प्राप्त हो रही है ऐसी वेश्यायें और प्रिय रानियाँ आकर उन्हें चारों ओर से घेर लेती थीं ।

तासामालापसंल्लापपरिहासकथादिभिः ।
सुखाशिकामसौ भेजे भोगाङ्गैश्च मुहूर्तकम् ॥ 132 ॥

इनके आभूषण, परस्पर की बातचीत और हास्यपूर्ण कथा आदि भोगों के साधनों से वे वहाँ कुछ देर तक सुख से बैठते हैं ।

ततस्युर्यावशेषेऽह्नि पर्यटन्मणि कुट्टिमे ।
वीक्षते स्म परां शोभामभितो राजवेश्मनः ॥ 133 ॥

इसके बाद जब दिन का चौथाई भाग शेष रह जाता था तब मणियों से जड़ी हुई जमीन पर टहलते हुए वे चारों ओर राजमहल की उत्तम शोभा देखते थे ।

रजन्यामपि यत्कृत्यमुचितं चक्रवर्तिनः ।
तदाचरन् सुखैनैष त्रियामा मत्यवाह्यत् ॥

रात में भी चक्रवर्ती के जो कार्य थे उन्हें करते हुए वे सुख से रात्रि व्यतीत करते थे ।

कदाचिदुचितां वेलां नियोग इति केवलम् ।
मन्त्रयामास मन्त्रज्ञैः कृतकार्योऽपि चक्रभृत् ॥ 136 ॥

यद्यपि वे चक्रवर्ती कृतकृत्य हो चुके थे अर्थात् विजय आदि का समस्त कार्य पूर्ण कर चुके थे तथापि केवल नियोग समझकर कभी कभी उचित समय पर मंत्रियों के साथ सलाह करते थे ।

तन्त्रावायगता चिन्ता नास्यासीद् विजितक्षितेः ।
तन्त्र चिन्तैव नन्वस्य स्वतन्त्रस्येह भारते ॥ 137 ॥

जिन्होंने समस्त पृथ्वी जीत ली है और जो इस भरत क्षेत्र में स्वतंत्र है ऐसे उस भरत को अपने तथा परराष्ट्र की कुछ भी चिन्ता नहीं थी, यदि चिन्ता थी तो केवल तंत्र अर्थात् स्वराष्ट्र की ही चिन्ता थी । (आदि पु. एकचत्वारिंशत् पर्व पृ. 327)

सर्वविद्या भरित् भरत -

तेन षाड्गुण्यमभ्यस्तमपरिज्ञानहानये ।
शासतोऽस्याविपक्षां क्षमां कृतं संध्यादिचर्चया ॥ 138 ॥

(आ. पु. प. 41 पृ. 329)

उन्होंने अपना अज्ञान नष्ट करने के लिए ही छः गुणों का अभ्यास किया था क्योंकि जब वे शत्रु रहित पृथ्वी का पालन करते थे तब उन्हें सन्धि विग्रह आदि की चर्चा से क्या प्रयोजन था ।

राजविद्याश्चतस्रोऽभूः कदाचिच्च कृतक्षणः ।
व्याचख्यौ राजपुत्रेभ्यः ख्यातये स विचक्षणः ॥ 139 ॥

अतिशय विद्वान महाराज भरत केवल प्रसिद्धि के लिए ही कभी -कभी बड़े उत्साह केसाथ राजपूतों के लिए अन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्ड-नीति इन चार राजविद्याओं का व्याख्यान करते थे ।

कदाचिन्निधिरत्नानामकरोत्स निरीक्षणम् ।
भाण्डागारपदे तानि तस्य तंत्र पदेऽपि च ॥ 140 ॥

वे कभी कभी निधियों और रत्नों का भी निरीक्षण करते थे क्योंकि निधियों और रत्नों में से कुछ तो इनके भाण्डार में थे और कुछ उनकी सेना में थे ।

कदाचिद्धर्मशास्त्रेषुयाः स्युर्विप्रतिपत्तयः ।
निराचकार ताः कृत्स्नाः ख्यापयन् विश्वविन्मतम् ॥ 141 ॥

कभी-कभी वे सर्वज्ञदेव का मत प्रकट करते हुये धर्मशास्त्र में जो कुछ विवाद थे उन सबका निराकरण करते थे ।

आप्तोपज्ञेषु तत्वेषु कांश्चित् संजातसंशयान् ।
ततोऽपाकृत्य संशीतेस्तत्तत्वं निरणीनयत् ॥ 142 ॥

भगवान अरहन्त देव के कहे हुए तत्त्वों में जिन किन्हीं को सन्देह उत्पन्न होता था उन्हें वे उस सन्देह को हटाकर तत्त्वों का यथार्थ निर्णय कराते थे ।

तथाऽसावर्थशास्त्रार्थे कामनीतौ च पुष्कलम् ।
प्रावीण्यं प्रथयामास यथात्र न परः कृती ॥ 143 ॥

इसी प्रकार वे अर्थशास्त्र के अर्थ और काम में अपना पूर्ण चातुर्य इस तरह प्रकट करते थे फिर संसार में उनके समान दूसरा चतुर नहीं रह जाता था ।

हस्तितन्त्रेऽश्वतन्त्रे च दृष्टवा स्वातन्त्र्यमीशितुः ।
मूलतन्त्रस्य कर्ताऽयमित्यास्था तद्विदामभूत् ॥ 144 ॥

हस्तितंत्र और अश्वतंत्र में महाराज भरत की स्वतंत्रता देखकर उन शास्त्रों को जानने वाले लोगों को यही विश्वास होता था कि इन सबके मूल शास्त्रों के कर्ता यही हैं ।

आयुर्वेदे स दीर्घायुरायुर्वेदो नु मूर्तिमान ।
इति लोको निरारेकं श्लाघते स्म निधीशिनम् ॥ 145 ॥

आयुर्वेद के विषय में तो सब लोग निधियों के स्वामी भरत की बिना किसी शंका के ही प्रशंसा करते थे कि यह दीर्घायु क्या मूर्तिमान आयुर्वेद ही है अर्थात् आयुर्वेद ने ही क्या भरत का शरीर धारण किया है ।

सोऽधीती पदविद्यायां स कृती वागलंकृतौ ।
स छन्दसांप्रतिछन्द इत्यासीत् संमतः सताम् ॥ 146 ॥

इसी प्रकार सज्जन लोग यह भी मानते थे कि वे व्याकरण विद्या में कुशल हैं, शब्दालंकार में निपुण हैं और छन्दशास्त्र के प्रतिबिम्ब हैं ।

तदुपज्ञं निमित्तानि शाकुनं तदुपक्रमम् ।
तत्सर्गो ज्योतिषां ज्ञानं तन्मतं तेन तत्त्रयम् ॥ 147 ॥

निमित्त शास्त्र सबसे पहले उन्हीं के बनाये हुए हैं, शकुन शास्त्र उन्हीं के कहे हुए हैं और ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान उन्हीं की सृष्टि है इसीलिए उक्त तीनों शास्त्र उन्हीं के मत हैं, ऐसा समझना चाहिए ।

स निमित्तं निमित्तानां तन्त्रे मन्त्रे सशाकुने ।
दैवज्ञाने परं दैवमित्यभूत्संमतोऽधिकम् ॥ 148 ॥

वे निमित्त शास्त्रों के निमित्त हैं और तन्त्र, मन्त्र, शकुन तता ज्योतिष शास्त्र में उत्तम अधिष्ठाता देव हैं इस प्रकार सब लोगों में अधिक मान्यता को प्राप्त हुए थे ।

तत्संभूतौ समुद्रभूतमभूत पुरुषलक्षणम् ।
उदाहरणमन्यत्र लक्षितं तेन तत्तनोः ॥ 149 ॥

महाराज भरत के उत्पन्न होने पर पुरुष के सब लक्षण उत्पन्न हुए थे इसी लिये दूसरी जगह उनके शरीर के उदाहरण ही देखे जाते थे ।

अन्येष्वपि कलाशास्त्रसंग्रहेषु कृतागमाः ।
तमेवादर्शमालोक्य संशवांशाद् व्यरंसिषु ॥ 150 ॥

शास्त्रों के जानने वाले पुरुष कहे हुए शास्त्रों के सिवाय अन्य कलाशास्त्रों के संग्रह में भी भरत को ही दर्पण के समान देखकर संशय के अंशों से विरक्त होते थे अर्थात् अपने अपने संशय दूर करते थे ।

येनास्या सहजा प्रजा पूर्वजन्मानुषङ्गिणी ।
तेनैषा विश्वविद्यासु जाता परिणतिः परा ॥ 151 ॥

चूँकि उनकी स्वाभाविक बुद्धि पूर्वजन्म से संपर्क रखने वाली थी इसलिए ही उनकी समस्त विद्याओं में उत्तम प्रगति हुई थी ।

इत्थं सर्वेषु शास्त्रेषुकलासु सकलासु च ।
लोके स संमतिं प्राप्य तद्विद्यानां मतोऽभवत् ॥ 152 ॥

इस प्रकार समस्त शास्त्र और समस्त कलाओं में प्रतिष्ठा पाकर वे भरत उन विद्याओं के जानने वालों में मान्य हुये थे ।

किमत्र बहुनोक्तेन प्रज्ञापारमितो मनुः ।
कृत्स्नस्य लोकवृत्तस्य स भेजे सूत्रधारताम् ॥ 153 ॥

इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ है ? इतना कहना हीपर्याप्त है कि बुद्धि के पारगामी कुलकर भरत समस्त लोकाचार के सूत्रधार हो रहे थे ।

राजसिद्धान्ततत्त्वज्ञो धर्मशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
परिख्यातः कलाज्ञाने सोऽभून्मूर्ध्नि सुमेधसाम् ॥ 154 ॥

वे राजशास्त्र के तत्वों को जानते थे, धर्मशास्त्र के तत्वों के जानकार थे और कलाओं के ज्ञान में प्रसिद्ध थे । इस प्रकार उत्तम विद्वानों के मस्तक पर सुशोभित हो रहे थे अर्थात् सब में श्रेष्ठ थे ।

यथार्थ से साहित्य उसे कहते हैं जिससे नैतिक सदाचार, विनय, अहिंसा, सत्य-निष्ठा को पौष्टिक तत्त्व मिलें । परन्तु जिस साहित्य के माध्यम से कुशीलता, भ्रष्टाचार, उत्शृंखलता आदि की प्रेरणा मिलती है, वे सब कुशास्त्र एवं समाज के लिए अहितकर, कलंक स्वरूप, विष मिश्रित भोजन के सदृश हैं ।

(लेखक की कृति -'क्रान्ति के अग्रदूत' से)

7 भरत द्वारा कैलाश पर्वत पर जिन मंदिर निर्माण

भरतेश्वरनष्टापद गिरोद्योल् लेसागि सभेद चैत्याबलियं ।
तरलाक्षिगे वण्णिसुतुं पुरुपरमेश्वरन् चरितेयं केलिसुतुं ॥

धर्मामृत 10 आश्वास 26

श्री भरत चक्रवर्ती द्वारा निर्मित अत्यन्त सुन्दर बहत्तर चैत्यालय जैसे कैलाश पर्वत पर सुशोभित हो रहे हैं, उसी प्रकार उस धनश्री के मन में सम्पूर्ण चैत्यालय प्रतिबिम्ब हो रहे हैं ।

जिने यज्ञं करिष्याम इत्यधिवसिताः किल ।
जित्त्वा दिशो जिनानिष्ट्वा निर्वृत्ता भरतादयः ॥

प्रतिष्ठासारोद्धार -7

कैलाश पर्वत से आदीश्वर प्रभु-ऋषभदेव मोक्ष गये थे । वह एक तीर्थस्थल बन गया था । भरत ने वहाँ अनेक स्वर्णमयी जिनग्रहों का निर्माण करवाया । उनमें रत्नमयी प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित करवाया । द्यानतविलास में कविवर द्यानतराय ने इसका सुन्दर वर्णन किया है ।

फूली बसंत जहँ आदीसुर शिवपुर गये ।
भरत भूप बहत्तर जिनगृह फनकमयी सब निरमये ॥
तीन चौबीस रतनमय प्रतिमा अंगरंग जे जे भये ।
सिद्ध समान शीष सम सबके अद्भुत शोभा निरमये ॥
द्यानत सो कैलास नमों हों गुन का पै जान बरनये ।

द्यानत विलास -57

जहाँ भगवान श्री आदिनाथ शिवपुर (कैवल्यधाम, निर्वाण) को प्राप्त हुए, उस कैलास पर बसन्त ऋतु फूल रही है-आनन्द उद्यान महक रहे हैं । भरत चक्रवर्ती ने बहत्तर जिन मंदिरों का निर्माण करवाया है, वे कांचन उपकरण से निर्मित हैं । उन चैत्यालयों में बहत्तर रत्नमय प्रतिमाएँ विराजमान हैं, जिनका अंग रंग स्वाभाविक चारुता लिए हैं । आलौकिक शोभा सम्पन्न उन समस्त प्रतिमाओं के शीर्ष सिद्ध भगवान् की मुद्रा में हैं । कवि द्यानतराय कहते हैं कि उस कैलाश को नमस्कार है जहाँ प्रभु को निर्वाण प्राप्त हुआ, उसके गुण कौन गा सकता है । (भरत और भारत)

अनेक जैन पुराणों से विदित है कि भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत पर जिन मंदिर का निर्माण किया था । सगर भारत वर्ष का द्वितीय महान चक्रवर्ती सम्राट हुआ था । उसके साठ हजार शक्तिशाली पुत्र हुये थे । एक दिन सगर चक्रवर्ती अपने राज दरबार में सिंहासन के ऊपर विराजमान थे । उस अवसर पर उनके शक्तिशाली साठ हजार पुत्र राजदरबार में आगमन करते हैं ।

अव्वाणि परिट्ठउ छुडु जि णाम,
सहसाइं सट्ठि तणुरुहहं ताम।
आयइं भणंतइं जीय देव,
पायडहुँ तुहारी पाय सेव।
दे देहि तुरिउ आएसु किं पि,
णीसरहुँ महारिउ रणि पयं पि।
मंदर महिहर जेवड्डु जं पि,
लीलाई सभाणहुँ कज्जु तं पि:
तं णिसुणिवि सक्क समाण एण
विहसेप्पिणु वुत्तउं राणएण।
आएसहु कारणु किं पि णत्थि,
आरुहिवि तुरंगम मत्तहत्थि।
अणउहुँजहु महु रिद्धिहि फलाई,
मा जंपह वयणइं चप्फलाइं।

जैसे ही वह अपने दरबार में बैठा, वैसे ही उसने अपने साठ हजार पुत्रों को देखा । आते हुये उन्होंने कहा - 'हे देव ! आपकी जय हो, हम आपके चरणों की सेवा प्रकट करते हैं । आप शीघ्र ही कोई आदेश दीजिए, यदि युद्ध में सुमेरु पर्वत के बराबर भी शत्रु होगा, तो भी हम अपना पैर नहीं हटायेंगे इस कार्य को भी खेल खेल में सम्मानित करेंगे ।'

यह सुनकर इन्द्र के समान हँसते हुए राजा सगर ने कहा "आदेश देने के लिए कोई कारण नहीं है तुम लोग अश्वों और मतवाले हाथियों पर चढ़कर मेरे वैभव के बलों को चखो । चंचल वचनों का प्रयोग मत करो ।"

किं वग्गह पेसणु मग्गह मंडलाइं धणरिद्धइं ।
मुहु एक्कें मुक्कें चक्कें सुट्ठु दुसज्झइं सिद्धइं ॥ 10 ॥

क्यों सनकते हो और आज्ञा माँगते हो । मेरे द्वारा मुक्त एक चक्र से ही दु:साध्य और धन सम्पन्न मण्डल अच्छी तरह जीत लिए गए ।

अह जई सुयत्तु दक्खविंउ अज्जु,
तो करह महारउ धम्म कज्जु।
देवेण जाइं चक्केसरेण,
काराविया इं भरहे सरेण।
लंबिय घंटा चामरयया हं
केलासु गंपि कचंणमया हं।
वरसिहरहं चउवीसहं विताहं,
परिरक्ख पउंजह जिणहराणं।
जिह णासइ सलमाणवहं भग्गु,
तिह विरयह तरुसिलसलिल दग्गु।
ता णिग्गय तणच पसाउ भणिवि,
जम दंड चंड भुयदंड धुणिवि।
धर धरणक्खम उद्दुद्धसोंड,
णं मयगल मयजलगिल्लगंड।
धाइय जुवाण मुहमुक्कराव,
णं पलय जलय गज्जणसहाव।

अथवा यदि तुम्हें आज अपना सुपुत्रत्व दिखाना है तो हमारा एक धर्म कार्य करो। चक्रवर्ती राजा भरतेश्वर ने जिन मंदिरों का जो निर्माण करवाया था, तुम कैलाश पर्वत जाकर, जिनमें घण्टा, चामर और ध्वज अवलम्बित हैं ऐसे स्वर्णमय और श्रेष्ठ शिखर वाले चौबीसों जिन मंदिरों की परीक्षा करो । तुम वृक्षों, चट्टानों और जलों का दुर्ग बनाओ जिससे दुष्ट मनुष्यों का मार्ग (आना) नष्ट हो जाए । तब जैसी आज्ञा -कहकर वे पुत्र यमदण्ड के समान प्रचण्ड अपने भुजदण्ड ढोकते हुए निकल पड़े, जैसे वे पृथ्वी धारण करने में सक्षम, अपनी सूंड़ ऊपर किए हुए, मद से आर्द्र गण्डस्थल वाले मद गज हों । अपने मुँह से शब्द करते हुए वे युवक ऐसे दौड़े मानो गर्जना स्वभाव वाले प्रलय मेघ हों ।

पविदंडें खणरुइचंडे फाडिउ खणि खोणीयलु ।
णरसारहिं रायकुमारहिं देवहुँ दाविउं भुयबलु ॥ 11 ॥

बिजली की तरह प्रचण्ड वज्रदण्ड से उन्होंने एक क्षण में पृथ्वी तल को विदीर्ण कर दिया और इस प्रकार मनुष्य श्रेष्ठ उन राजकुमारों ने देवों के लिए अपना बाहुबल दिखा दिया ।

णियचिर पावहपिहुपहु भुयंति,
करिकरड गलियमयमलु धुयंति।
परिभमियवारिविब्भम भमंति,
कमलोयरमयरंदइं वमन्ति।
परिमजमिलियालिहिं गुमुगुमंति,
जणयवजालोलिहिं सिमिसिमंति।
सविसइं विसिविवरइं पइसरंति,
फणिफुक्करिहिं दरोसरति।
गिरिकंदर दरि सर सरि भरंति,
दिस णहयलु थलु जलु जलु करंति।
उत्तुंगतरंगहि णहि मिलंति,
वियडयरसिलायल पक्खवलंति।
कच्छवमच्चदोह समुच्छलंति,
हंसावलि कलरव कलयलंति।
परिउल जलवलयहिं चलवलतिं,
कड्ढिय गंगाणइ खलखलंति।
वलयउ ताइ काइलासु केंव,
वेसाइ पमत्तु भुयंगु जेंव।

अपने चिर प्रवाह के विशाल मार्ग को छोड़ती हुई, हाथी के गण्डस्थलों से गलित मद जल को धोती हुई, घूमते जलों से विभ्रम को धारण करती हुई, कमलोदशें से मकरन्द का वमन करती हुई, सौरभ मिले हुये भ्रमरों के द्वारा गुनगुनाती हुई, वनों की दावाग्नियों की ज्वालाओं से सिमसिमाती हुई, साँपों के विषैले बिलों में प्रवेश करती हुई, नागों के फुँकारों से थोड़ा फैलाती हुई, पहाड़ की गुफाओं, घाटियों, सरोवरों, नदियों को भरती हुई, दिशाओं ,आकाश तल, स्थल और जल को जलमय बनाती हुई,ऊँची तरंगों से आकाश से मिलती हुई विकट शिलातलों का प्रक्षालन करती हुई, कछुओं, मत्स्यों के समूहों को उछालती हुई, हंसावलियों का कलरव करती

विशाल जलवलियों से चिल-बिल करती हुई और खल-खल करती हुई, गंगा नदी आकर्षित की गई, उसके द्वारा कैलाश पर्वत उसी प्रकार घेर दिया गया, जिस प्रकार वेश्या के द्वारा प्रमत्त लम्पट घेर लिया जाता है ।

धवलंगइ वेढ़िउ गंगइ पुणु वि मज्झु सो भावइ ।
सुरमणहरु मंदरमहिहरु तारापंतिइ णावइ ॥ 12 ॥

गोरे अंगों वाली गंगा नदी के द्वारा घेरा गया कैलाश पर्वत मुझे लगता है मानो देव सुन्दर मन्दराचल तारापंक्तियों से घिरा हुआ हो ।

इस प्रकरण का वर्णन आचार्य श्री गुणभद्र विरचित उत्तर पुराण में भी निम्न प्रकार पाया जाता है । किसी समय सिंह के बच्चों के समान उद्धत और अहंकार से भरे हुए वे राजपुत्र सभा में विराजमान चक्रवर्ती से इस प्रकार निवेदन करने लगे कि शूरवीरता और साहस से सुशोभित क्षत्रिय पुत्रों का यौवन नहीं है । ऐसे प्राणी का जन्म लेना अथवा जीवन धारण करने से क्या लाभ है । जन्म लेना और जीव धारण करना ये दोनों ही सर्व साधारण है अर्थात् सब जीवों के होते हैं । इसलिए हे राजन! हम लोगों को साहस से भरा कोई ऐसा कार्य बताइए जिससे हमारी केवल भोजन में सम्मिलित होने से उत्पन्न होने वाली दीनता अथवा अधर्म दूर हो सके । यह सुनकर चक्रवर्ती ने हर्षित होकर कहा- हे पुत्रो ! चक्र से सब कुछ सिद्ध हो चुका है, हिमवान् पर्वत और समुद्र के बीच ऐसी कैन सी वस्तु है जो मुझे सिद्ध नहीं हुई है ? तुम्हारे लिए मेरा यही काम है कि तुम लोग मिलकर मेरी इस विशाल राज्यलक्ष्मी का यथा योग्य नीति से उपयोग करो। इस प्रकार राजा ने जब उन्हें बहुत निवारण किया तब वे चुप हो गए। सो ठीक है क्योंकि शुद्ध वंश में उत्पन्न हुए पुत्र पिता के आज्ञाकारी ही होते हैं ।

आत्म शुद्धि से भरे वे राजपुत्र किसी एक दिन फिर राजा के पास जाकर कहने लगे कि यदि आप हम लोगों को कोई कार्य नहीं देते हैं तो हम भोजन भी नहीं करते हैं।

तच्छुत्वैस स कः प्रेष इति चिन्तया मनाक् ।
नन्वस्ति कार्यशेषोऽयं धर्म इत्यान्तदृष्टिना ॥ 106 ॥
राज्ञाप्याज्ञापिता यूयं कैलाशे भरते शिना।
गृहाः कृता महारत्नैश्चतुर्विंशतिरर्हताम् ॥ 107 ॥
तेषां गङ्गां प्रकुर्वीध्वंपरिखा परितो गिरिम् ।
इति तेऽपि तथा कुर्वन दण्डरत्नेन सत्वरम् ॥ 108 ॥

पुत्रों का निवेदन सुनकर राजा कुछ चिन्ता में पड़ गए । वे सोचने लगे कि उन्हें कौन सा कार्य दिया जाये । अकस्मात् उन्हें याद आ गई कि अभी धर्म का एक कार्य बाकी है । उन्होंने हर्षित होकर आज्ञा दी कि भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत पर महारत्नों से अरहन्त देव के चौबीस मंदिर बनवाए हैं सो तुम लोग उस पर्वत के चारों और गंगा नदी को उन मंदिरों की परिखा बना दो । उन राजपुत्रों ने भी पिता की आज्ञानुसार दण्ड रत्न से वह काम शीघ्र ही कर दिया ।

कैलाश पर्वत के ऊपर जिनेन्द्र चैत्य एवं चैत्यालय का निर्माण भरत चक्रवर्ती ने किया था उसका वर्णन रविषेणाचार्य ने जैन रामायण पद्म पुराण में निम्न प्रकार से किया है ।

एकदा रावण वायुयान पुष्पक विमान में बैठकर कैलाश पर्वत को अतिक्रम कर रहा था । हठात् तीव्रगामी शक्तिशाली पुष्पक विमान किसी महान् शक्ति से आकर्षित होकर रुक गया । तब रावण ने विमान रुकने का कारण शोध करते हुए पाया कि नीचे कैलाश पर्वत पर पूर्व स्वबैरी राजा बाली दिगम्बर मुनि वेष में ध्यान अवस्था में बैठे हुए थे । पूर्व वैरत्व को स्मरण करके विद्याधर रावण ने समस्त विद्याओं के सहयोग से विशालकाय कैलाश पर्वत को अपने हाथों से ऊपर उठा दिया और सोचा, कैलाश पर्वत सहित बाली को समुद्र में फेंककर मार दूँगा । पर्वत के ऊपर उठाने के कारण सम्पूर्ण पर्वत के साथ साथ पर्वत के समस्त वृक्ष,लता, वनस्पति कम्पायमान होने लगे ।

ततः सर्वतकाभिरण्यवायुनेवाकुलीकृते ।
भुवने भगवान् बालिरवधिज्ञात राक्षसः ॥ 145 ॥

तदनन्तर जब समस्त संसार संवर्तक नामक वायु से ही मानो आकुलित हो गया था तब भगवान बाली मुनिराज ने अवधिज्ञान से दशानन नामक राक्षस को जान लिया।

अप्राप्तः पीडनं स्वस्य धीरः कोपविवर्जितः ।
तथाविस्थतसर्वाङ्गश्चेतसीदं न्यवेशयत् ॥ 146 ॥

यद्यपि उन्हें स्वयं कुछ भी पीड़ा नहीं हुई थी और पहले की तरह उनका समस्त शरीर निश्चल रूप से अवस्थित था तथापि वे धीरे-वीर और क्रोध से रहित हो अपने चित्त में इस प्रकार विचार करने लगे कि -

कारितं भरतेनेदं जिनायतनमुत्तमम् ।
सर्वरत्नमयं तुङ्गं बहुरूपविराजितम् ॥ 147 ॥

चक्रवर्ती भरत ने ये नाना प्रकार के सर्वरत्नमयी ऊँचे-ऊँचे जिन मंदिर बनवाये हैं । भक्ति से भरे हुए सुर और असुर प्रतिदिन इनकी पूजा करते हैं सो इस पर्वत के विचलित हो जाने पर कहीं वे जिन मंदिर नष्ट न हो जायें ।

प्रत्यहं भक्तिसंयुक्तैः कृतपूजं सुरासुरैः ।
मा विनाशि चलत्यस्मिन् पर्वते भिन्नपर्वणि ॥148॥
ध्यात्वेति चरणाङ्गुष्ठपीडितं गिरिमस्तकम् ।
चकार शोभनध्यानाददूरीकृतचेतनः ॥149॥

ऐसा विचार कर शुभ ध्यान के निकट ही जिनकी चेतना थी ऐसे मुनिराज बाली ने पर्वत के मस्तक को अपने पैर के अंगूठे से दबा दिया ।

ततो कहाभराक्रान्त भग्न बाहुबलो भृशम् ।
दुःखाकुलश्चलद्रक्तस्पष्टमञ्जुललोचनः ॥150॥
भग्नमौलिशिरोगाढनिविष्ट धरणीधरः ।
निमज्जद् भूतलन्यस्तजानुनिर्भुग्नजङ्घकः ॥151॥

तदनन्तर जिसकी भुजाओं का बल बहुत भारी बोझ से आक्रान्त होने के कारण अत्यधिक टूट रहा था, जो दुःख से आकुल था, जिसकी लाल-लाल मनोहर आँखे चंचल हो रही थीं ऐसा दशानन अत्यन्त व्याकुल हो गया । इसके सिर का मुकुट टूट कर नीचे गिर गया और उस नंगे सिर पर पर्वत का भार आ पड़ा ।

नीचे धँसती हुई पृथ्वी पर उसने घुटने टेक दिये । स्थूल होनेके कारण उसकी जंघायें मांस पेशियों में निमग्न हो गयीं । उसके शरीर से शीघ्र ही पसीने की धारा बह निकली और उससे उसने रसातल को धो दिया । उसका सारा शरीर कछुए के समान संकुचित हो गया ।

उस समय चूँकि उसने सर्व प्रयत्न से चिल्लाकर समस्त संसार को शब्दायमान कर दिया था, इसीलिए वह पीछे चलकर सर्वत्र प्रचलित 'रावण' इस नाम को प्राप्त हुआ ।

उपरोक्त उदाहरणों से सिद्ध होता है कि ऋषभदेव के साधन स्थल, विहार स्थल एवं मोक्ष गमन स्थल पवित्र कैलाश पर्वत के ऊपर उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत के प्रथम एवं प्रधान चक्रवर्ती भरत ने बहुमूल्य रत्न निर्मित जिन चैत्य एवं चैत्यालय की स्थापना

की थी । इससे सिद्ध होता है कि भरत चक्रवर्ती ने जिस प्रकार राज्य विस्तार किया था, उसी प्रकार धर्म-विस्तार एवं प्रचार के लिए धर्मायतन का निर्माण करवाया था।

इससे सिद्ध होता है कि इस भारतवर्ष में सर्वप्रथम मंदिर निर्माण एवं मूर्ति की स्थापना भरत चक्रवर्ती ने की थी । भरत चक्रवर्ती ने गृहस्थ अवस्था में जब वे चक्रवर्ती थे तब उन्होंने स्वजीवित काल में मंदिर एवं मूर्ति निर्माण करवाया था । भारत के प्रथम चक्रवर्ती भरत एवं भारत के प्रथम धर्मचक्री ऋषभदेव समकालीन थे । आदिनाथ भगवान का काल तृतीय भोग भूमि का अंतिम चरण एवं कर्मभूमि (चतुर्थकाल) का प्रथम चरण है जो कि प्राग वैदिक तथा प्राग ऐतिहासिक काल है । प्रायः वह काल आज से असंख्यात करोड़ अरब वर्ष है । इससे सिद्ध होता है कि मंदिर निर्माण, मंदिर स्थापना एवं मूर्तिपूजा सर्वप्रथम जैनधर्म में प्रारम्भ हुई । अभी भी जो जो प्राचीनतम् मूर्तियाँ हैं उनमें अधिकाँश मूर्तियाँ जैन निर्ग्रन्थ दिगम्बर भगवान् की हैं। हड़प्पा मोहनजोदड़ो के उत्खनन से उपलब्ध अनेक मूर्तियाँ जैन दिगम्बर तीर्थंकर की हैं । अभी भी पृथ्वी में विशालकाय मनमोहक दिगम्बर मूर्ति दक्षिण भारत के कर्नाटक राज्य के गोम्मटेश्वर की मूर्ति है । इस मूर्ति को पृथ्वी का आठवाँ आश्चर्य कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । इस मूर्ति की ऊँचाई ५४ फीट है । मध्यप्रदेश स्थित बड़वानी बावनगजा आदीश्वर की मूर्ति की ऊँचाई ८४ फीट है । एक अंग्रेजी विद्वान बताते थे कि भारत के प्रत्येक ग्यारह मील में दिगम्बर जैन मूर्ति उपलब्ध होती है । अतः मंदिरनिर्माण, मूर्तिस्थापना, मूर्तिपूजा, जैन धर्म का अवदान है । अभी भी काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक प्रत्येक क्षेत्र में अति मनोहर ,कलापूर्ण, प्राचीन जैन मंदिर एवं मूर्तियाँ सर्वत्र दृष्टिगोचर होती हैं ।

भरत जी घर में ही वैरागी (कथा)

भारत के प्रथम एवं सर्वश्रेष्ठ भरत चक्रवर्ती धन, जन, वैभव, प्रभु की सत्ता सम्पन्न होते हुए भी बाह्य वैभव को नश्वर हेय-परवस्तु मानकर उसके प्रति आसक्ति नहीं रखते थे । वे अपने पिता श्री ऋषभदेव के समान आध्यात्मिक वैभव प्राप्त करने के लिए अन्तरङ्ग से लालायित रहते थे । बाह्य में अतुल धनवैभव होते हुए भी अन्तरंग में वे वैराग्य सम्पन्न थे, यह बात अनेक जनों के लिए सन्देहास्पद थी । परन्तु उनके अन्तरंग में जो विचारधारा बहती थी उसको साधारण जन नहीं जान सकते थे । उनके

अनासक्त भाव को स्पष्ट करने के लिए यहाँ एक उदाहरण उद्धृत कर रहे हैं ।

विनीता नगरी में भगवान ऋषभदेव धर्म देसना कर रहे थे । प्रभु ने महा आरम्भ और महापरिग्रह को नरक का कारण बतलाते हुए, जीवन में आरम्भ और परिग्रह को कम करने का उपदेश दिया । सभा में चक्रवर्ती भरत भी उपस्थित थे, तथा अन्य प्रजागण भी । विनीता के एक स्वर्णकार ने प्रभु से जिज्ञासा की -भन्ते ! मेरी मुक्ति पहले होगी या भरतेश की ?

प्रभु ने उसकी उथल-पुथल देखी, वह अपने आप को अल्पारंभी और अल्प परिग्रही मान बैठा था और उसकी अपनी तुलना में चक्रवर्ती भरत तो निश्चय ही महारंभी और महापरिग्रही था । वह आरम्भ और अपरिग्रह को स्थूल दृष्टि से देख रहा था । प्रभु ने स्पष्टीकरण किया -भद्र! भरत की मुक्ति पहले होगी, वह अल्प आरम्भी है ।

स्वर्णकार तो मौन हो गया, पर उसका हृदय तो शंकाकुल हो उठा । भरत आदिनाथ के पुत्र हैं इसलिए उन्होंने अपने पुत्र की मुक्ति पहले बता दी । उसे इतना बड़ा साम्राज्य भोगते हुए भी अल्पारंभी और अल्प परिग्रही बता दिया । आखिर पक्षपात से इस संसार मैं कौन बचा है ? स्वर्णकार ने भगवान की इस मनसा परिकल्पित पक्षपात पूर्ण कथन की चर्चा लोगों के सामने की । बात हवा में फैलती हुई चक्रवर्ती भरत के पास पहुँच गई ।

भरत ने सोचा स्वर्णकार को सत्य तो समझाना ही है, पर वह मन्द बुद्धि है- तर्क से नहीं, उदाहरण से ही समझ सकेगा । स्वर्णकार को राजसभा में बुलाया गया। भरत ने कहा - ''तुम इस प्रकार की गलत बात कर रहे हो, जानते हो चक्रवर्ती की अवज्ञा का क्या दण्ड होता है ।''

सम्राट की लाल-लाल रोषपूर्ण आँखें देखकर स्वर्णकार के प्राण सूखने लगे। वह हाथ जोड़कर क्षमा माँगने लगा ।

''चक्रवर्ती ने कृत्रिम रोष दिखाते हुए कहा- अपराधी ऐसे नहीं छूट सकता इसको दण्ड मिलेगा ।'' सम्राट का आदेश हुआ -तेल से छलोछल भरा हुआ एक कटोरा स्वर्णकार की हथेली पर रखा गया । चक्रवर्ती ने सूचना देते हुए कहा - सावधान ! विनीता नगरी के चौराहों -बाजारों और मुख्य मार्गों पर भ्रमण करते हुए

इस कटोरे से तेल की एक भी बूँद गिरने न पाये । यदि कहीं तेल छलक जाय, तो तुम्हारे साथ चलने वाले शस्त्रधारी राजपुरुष वहीं पर शस्त्र से तुम्हारे दो टुकड़े कर डालेंगे ।

चक्रवर्ती की आज्ञा सुनते ही स्वर्णकार को जैसे काठ मार गया (स्तंभित हो गया) वह काँप उठा, पर अब करे भी क्या ? चक्रवर्ती का आदेश जो ठहरा, तुरन्त निकल पड़ा विनीता के परिभ्रमण पर । नगर में स्थान स्थान पर कहीं उत्सव हो रहे थे, तो कहीं मनोहर नृत्य संगीत हो रहा था, लोगों की चहल-पहल आवागमन पर कुछ भी ध्यान नहीं गया । वह घूमता रहा, कटोरे पर दृष्टि टिकाये ।

संध्या होते-होते स्वर्णकार नगर का चक्कर लगाकर राजसभा में पहुँचा, तब उसके दम में दम आया । कटोरा वैसा का वैसा भरा हुआ चक्रवर्ती के सामने रखा।

भरत ने पूछा--''क्यों भाई, आज नगर में क्या देखा तुमने ?कहाँ कौन सा नाटक हो रहा था ?'' महाराज ! मेरी आँखों के समाने तो कटोरे पर केवल मौत नाचती हुई दिखाई दे रही थी । इसके अतिरिक्त मैंने कुछ भी नहीं देखा ।

अच्छा संगीत की मधुर स्वर लहरियों की ओर तो कान कुछ खींचे ही होंगे ?

''कानों में सिर्फ मौत की ही ध्वनि अविराम सुनाई दे रही थी, इसके अतिरिक्त मैंने कुछ भी तो नहीं सुना । ''

''क्यों, ऐसा क्यों हुआ ?''

''महाराज! मृत्यु का डर जो था । यदि थोड़ा सा भी इधर उधर ध्यान चला जाता और कटोरे से तेल की बूँद भी नीचे गिर गई होती तो मेरे प्राण वहीं लुट जाते।''

''मौत का इतना बड़ा डर''

''महाराज ! मौत से बड़ा डर संसार में और है ही क्या ?''

चक्रवर्ती ने स्वर्णकार पर ऊपर से नीचे तक एक दृष्टि डाली और फिर धीरे-धीरे गम्भीर स्वर में बोले-तुझे सिर्फ इस जन्म की आयु का डर था, अत: तू उत्सव का आनन्द न ले सका, न मधुर संगीत ही तुझे लुभा सका और न इतनी भीड़-भाड़ चहल-पहल ही तुझे अपने लक्ष्य से विचलित कर सकी । मेरे सामने तो जन्म - मरण की अनन्त परम्परा का भय खड़ा है, मृत्यु राक्षसी पदे-पदे और क्षणे-क्षणे मेरे सामने आग उगलती चली आ रही है । भला, मैं उस मृत्यु से निर्भय और बेपरवाह

होकर इस राज्य, वैभव में किस प्रकार लिप्त हो सकता हूँ ? अपने आपको कैसे भुला सकता हूँ ?

स्वर्णकार के अन्तर नयन खुलने लगे । भरत के जल कमलवत् अनासक्त जीवन का दर्शन उनके सामने स्पष्ट होने लगा ।

भरत चक्रवर्ती ने आरम्भ और परिग्रह का दर्शन समझाते हुये कहा - ''इतने बड़े साम्राज्य में मुझे कोई लगाव नहीं है, कोई भी प्रीति नहीं है, सिर्फ कर्त्तव्य बुद्धि से मैं अपने राज्य की व्यवस्था देखता चला जा रहा हूँ । प्रजा में न्याय नीति की स्थापना और उसकी सुख-समृद्धि ही मेरे राज्य सिंहासन का एकमात्र लक्ष्य है इसलिए परिग्रह और आरम्भ के बीच रहते हुए भी मेरा उससे ममत्व नहीं है । जीवन की नश्वरता का विचार और मृत्यु का दर्शन मुझे विषयासक्ति से बचाता है, इसलिए भगवान ने मेरी मुक्ति तुमसे पहले बतलाई है । समझे ।''

स्वर्णकार भरत के जीवन दर्शन के साथ अपने जीवन की तुलना करने लगा -''मामूली छोटा सा घर, परिवार और थोड़ी सी सम्पत्ति ! पर मेरी कितनी बड़ी आसक्ति ? आरम्भ और अपरिग्रह वस्तु में नहीं, भावों में है । चक्रवर्ती से भी अधिक आसक्ति तो मुझ में ही है, तो फिर भगवान ने ठीक ही तो कहा ।''

''महाराज ! मैं भटक गया था, अब समझ में आ गया । आसक्ति ही परिग्रह है, बन्धन है, और अनासक्ति ही मुक्ति है।'' स्वर्णकार चक्रवर्ती को नमस्कार करके विदा हुआ ।

साधु-सन्त ही भारतीय संस्कृति के प्राण हैं । भारतीय संस्कृति माने साधु संस्कृति है । जब तक हम साधुओं को आदर-सम्मान की दृष्टि से नहीं देखेंगे; उनकी रक्षा, सेवा उनकी समृद्धि नहीं करेंगे तब तक हम भारतीय संस्कृति की सुरक्षा-समृद्धि नहीं कर सकते हैं ।

(लेखक की कृति -'क्रांति के अग्रदूत' से

8 भरत का वैभव

भरत चक्रवर्ती के १४ रत्न-

(1) चक्र, (2) छत्र, (3) खड्ग, (4) दण्ड, (5) काकिणी, (6)मणि, (7) चर्म, (8) सेनापति, (9) गृहपति, (10) हस्ती, (11) अश्व, (12) पुरोहित, (13) स्थपित, (14) स्त्री, चक्रवर्ती के ये चौदह रत्न थे, इनमें प्रत्येक की एक हजार देव रक्षा करते थे तथा ये अत्यधिक सुशोभित थे ।

भरत चक्रवर्ती की ९ निधि -

(1) काल,(2) महाकाल, (3) पाण्डुक,(4) माणव, (5) नैसर्प, (6)सर्वरत्न, (7) शंख, (8) पद्म, (9) पिङ्गल ये पुण्यशाली चक्रवर्ती की नौ निधियाँ थीं । ये सभी निधियाँ अविनाशी थीं, निधिपाल नामक देवों के द्वारा सुरक्षित थीं और निरन्तर लोगों के उपकार मेंआती थीं ।

निधियों के आकार -

शकटाकृतयः सर्वे चतुरक्षाष्ट चक्रकाः ।
नव योजन विस्तीर्णा द्वादशायामसम्मिताः ॥ 112 ॥
ये चाष्टयोजनागाधा बहुवक्षार कुक्षयः ।
नित्यं यक्ष सहस्त्रेण प्रत्येकं रक्षितेक्षिताः ॥ 113 ॥

(हरिवंश पुराण, सर्ग 11 पृ. 206)

ये गाड़ी के आकार की थी, चार-चार भौरों और आठ पहियों से सहित थी। नौ योजन (72 मील) चौड़ी, बारह योजन (96 मील) लम्बी, आठ योजन (64 मील) गहरी और वक्षार गिरि के समान विशाल कुक्षि से सहित थी । प्रत्येक की एक-एक हजार यक्ष निरन्तर देख-रेख रखते थे । 112-113 ।

(1) काल निधि का कार्य -

ज्योतिर्निमित शास्त्राणि हेतुवादकलागुणाः ।
शब्दाशास्त्र पुराणाद्याः सर्वे कालनिधौ मताः ॥ 114 ॥

उनमें से पहली कालनिधि में ज्योति शास्त्र, निमित्त शास्त्र, न्याय शास्त्र, कला शास्त्र, व्याकरण शास्त्र एवं पुराण आदि का सद्भाव था अर्थात् कालनिधि से इन सबकी प्राप्ति होती थी ।

(2) महाकाल निधि का कार्य -

पञ्चलोहादयो लोहा नानाभेदाः प्रवर्तिताः ।
लब्धवर्णैर्विनिर्णेया महाकालनिधौ पुनः ॥ 115 ॥

दूसरी महाकाल निधि में विद्वानों के द्वारा निर्णय करने योग्य पंचलोह आदि नाना प्रकार के लोहों का सद्भाव था अर्थात् उससे इन सबकी प्राप्ति होती थी ।

(3) पाण्डुक निधि का कार्य -

धान्यानां सकला भेदाः शालिब्रीहियवादयः ।
कटुतिक्तादिभिर्द्रव्यैः प्रणीताः पाण्डुके निधौ ॥ 116 ॥

तीसरी पाण्डुक निधि में शाली, व्रीही जौ आदि समस्त प्रकार की धान्य तथा कडुवे, चरपरे आदि पदार्थों का सद्भाव था ।

(4) माणवक निधि का कार्य -

कवचैः खेटकैः खड्गैः शरैः शक्तिशरासनैः ।
चक्राद्यैरायुधैर्दिव्यैः पूर्णो माणवको निधिः ॥ 117 ॥

चौथी माणवक निधि कवच, ढाल, तलवार, बाण शक्ति, धनुष तथा चक्र आदि नाना प्रकार के दिव्य शस्त्रों से परिपूर्ण थीं ।

(5) सर्प निधि के कार्य -

शयनासन वस्तूनां विविधानां महानिधिः ।
सर्पो गृहोपयोग्यानां भाजनानां च भाजनम् ॥ 118 ॥

पाँचवीं सर्प निधि शय्या, आसन आदि नाना प्रकार की वस्तुओं तथा घर में उपयोग आने वाले नाना प्रकार के भोजनों की पात्र थी ।

(6) सर्व रत्न निधि का कार्य -

इन्द्रनील महानील वज्र वैडूर्य पूर्वकैः ।
सर्वरत्न निधिः पूर्णाः सुरत्नैः सुमहाशिखैः ॥ 119 ॥

छठवीं सर्व रत्न निधि इन्द्रनील मणि, महानील मणि, वज्रमणि आदि बड़ी - बड़ी शिखा के धारक उत्तमोत्तम गुणों से परिपूर्ण थी।

(7) शंख निधि का कार्य -

भेरीशङ्खानकैर्वीणा झल्लरी मुजरादिभिः ।
आतोद्यैश्चोद्य सम्पूर्णैः पूर्णः शङ्खः निधिर्महान ॥ 120 ॥

सातवीं शंख निधि भेरी, शंख , नगाड़े, वीणा, झल्लरी और मृदङ्ग आदि

आघात से तथा फूँककर बजाने योग्य नाना प्रकार के बाजों से पूर्ण थी ।

(8) पद्म निधि का कार्य -

पट्टचीण महानेत्रदुकूल वरकम्बलैः ।
वस्त्रैर्विचित्र वर्णाढ्यैः पूर्ण पद्मनिधि सदा ॥ 121 ॥

आठवीं पद्मनिधि पाटाम्बर, चीन, महानेत्र, दुकूल, उत्तम कम्बल तथा नाना प्रकार के रंग-बिरंगे वस्त्रों से परिपूर्ण थी।

(9) पिङ्गल निधि का कार्य -

कटकैः कटिसूत्राद्यैः स्त्री पुंसाभरणैः शुभैः ।
स पिङ्गल निधिः पूर्णो गजवाजि विभूषणैः ॥ 122 ॥

और नौवीं पिङ्गल निधि कड़े तथा कटिसूत्र आदि पुरुषों के आभूषण और हाथी, घोड़ा आदि के अलंकार से परिपूर्ण थी ।

निधि रक्षक -

कामवृष्टि वशास्तेऽमी नवापि निधयः सदा ।
निष्पादयन्ति निःशेषं चक्रवर्तिमनीषितम् ॥ 123 ॥

ये नौ की नौ निधियाँ कामवृष्टि नामक गृहपति के आधीन थी और सदा चक्रवर्ती के समस्त मनोरथों को पूर्ण करती थीं ।

चक्रवर्ती के वैभव -

रसोइया एवं आहार

शतानि त्रीणि षष्ट्या तु सूपकाराः परे -परे ।
कल्याणसिक्थमाहारं प्रत्यहं ये वितन्वते ॥ 124 ॥

चक्रवर्ती के एक से बढ़कर एक (तीन सौ साठ) 360 रसोइया थे जो प्रतिदिन कल्याणकारी सूपों (दालों) से युक्त आहार बनाते थे ।

सहस्रसिक्थः कबलो द्वात्रिंशत् तेऽपि चक्रिणः ।
एकश्चासौ शुभद्रायाः एकोऽन्येषां तु तृप्तये ॥ 125 ॥

एक हजार चावलों का एक कवल होता है, ऐसे बत्तीस कवल प्रमाण चक्रवर्ती का आहार था । सुभद्रा का आहार एक कवल था और एकअन्य समस्त लोगों की तृप्ति के लिए पर्याप्त था ।

चक्रवर्ती के 361 (तीन सौ इकसठ) रसोइया होते हैं और एक रसोइया 360 दिन तक ढाई द्वीप में रहने वाली दिव्य औषधि को अन्नपानादि में मिलाकर ग्रास बनाता है । फिर 32 ग्रासों में से केवल एक ग्रास निकालकर 48 कोस प्रमाण में रहने वाली

समस्त सेना को खाने के लिए देता है और उसे खाकर पानी पीते ही जब सभी को अजीर्ण हो जाता है तब वह ग्रास चक्रवर्ती के खाने योग्य परिपक्व होता है । ऐसे 32 ग्रासों को चक्रवर्ती प्रतिदिन पचाने वाला होता है ।

उन ग्रासों में से स्त्री रत्न, गजरत्न, अश्वरत्न केवल एक-एक ग्रास को पचा सकते हैं । अब चक्रवर्ती की इन्द्रियों की शक्ति को बतलाते हैं ।

सम्पूर्ण कटक सैन्य को धर्म कर्मानुष्ठान से चलाने वाला पुरोहित रत्न होता है । चक्रवर्ती के साढ़े तीन करोड़ बंधुवर्ग और संख्यात सहस्त्र पुत्र-पुत्रियाँ, 361 शारीरिक वैद्य थे ।

परिवार परिकरादि -

चित्रकार सहस्त्राणि नवतिर्नवभिः सह ।
द्वात्रिंशत् ते सहस्त्राणि नृपा मुकुट बद्धकाः ॥ **126** ॥
देशाश्चापि हि तावन्तो जयन्त्यपि सुरस्त्रियः ।
अन्तः पुरसहस्त्राणि तस्य षण्णवतिः प्रभोः ॥ **127** ॥

चक्रवर्ती के 99 हजार चित्रकार थे, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा थे, उतने ही देश थे और देवाङ्गनाओं को भी जीतने वाली छियानबें हजार रानियाँ (स्त्रियाँ) थीं ।

हलकोटि तथा गावस्त्रिकोट्यः कामधेनवः ।
कोट्यश्चाष्टादशाश्वानां निश्चेया वातरंहसाम् ॥ **128** ॥
लक्षाश्चतुरशीतिस्तु मंदमन्थरगामिनाम् ।
हस्तिनां सुरथानां च प्रत्येकं चक्रवर्तिनः ॥ **129** ॥

एक करोड़ हल थे, तीन करोड़ कामधेनु गायें थी, वायु के समान वेगशाली अठारह करोड़ घोड़े थे, मत्त एवं धीरे -धीरे गमन करने वाले चौरासी लाख हाथी और उतने ही उत्तम रथ थे ।

आदित्य यशसा सार्द्धं विवर्द्धन पुरोगमाः ।
पञ्च पुत्र शतान्यस्य वशाश्चरमदेहकाः ॥ **130** ॥

अर्ककीर्ति और विवर्धन आदि को लेकर पाँच सौ चरम शरीरी तथा आज्ञाकारी पुत्र थे ।

दशाङ्ग भोग -

भोजनं भोजनं शय्या चमूर्वाहन मासनम् ।
निधिरत्न पुरं नाट्यं भोगास्तस्य दशाङ्गकाः ॥ **131** ॥

(1) भाजन, (2) भोजन (3) शय्या (4) सेना (5) वाहन (6) आसन (7) निधि (8)रत्न (9) नगर और (10) नाट्य ये दश प्रकार के भोज्य थे ।

सेवक देव -

स षोडशसहस्त्रैश्च गणबद्धसुरैः सदा ।
सेवायां सेव्यते दक्षैः प्रमादरहितैर्हितैः ॥ **132** ॥

सेवा में निपुण, प्रमाद रहित एवं परम हितकारी सोलह हजार गणबद्ध देव सदा उनकी सेवा करते थे ॥ 132 ॥

भरत के वैशिष्ट्य -

विभवेन नरेन्दीसौ तादृशेन युतोऽपि सन् ।
शास्त्रार्थक्षुण्णधीश्चक्रे दुर्गति ग्रह निग्रहम् ॥ **133** ॥

यद्यपि राजाधिराज चक्रवर्ती इस प्रकार के विभव से सहित थे तथापि उनकी बुद्धि शास्त्रों के अर्थ विचार में निरत रहती थी और वे दुर्गति रूपी ग्रह का सदा निग्रह करे रहते थे ।

सद्वात्रिंशत्सहस्त्राणां स्मयबाहुल्यमस्मयः ।
अपाकशेद्विकीर्यैतान् दोः कृताहित मन्मथः ॥ **134** ॥

भुजाओं से शत्रुओं का मंथन करने वाले चक्रवर्ती ने यद्यपि बत्तीस हजार राजाओं को बिखेरकर उनका अभिमान नष्ट कर दिया था तथापि स्वयं अभिमान से रहित थे ।

श्री वृक्षलक्षितोरस्के स चतुः षष्टिलक्षणे ।
षोडशे मनुजेऽस्मिन् विडौजः श्री विडम्बिनी ॥ **135** ॥
स्वायम्भुवे महाभागे भरते भरतक्षितिम् ।
नीत्या शासति खण्डानां नित्यारवण्डितपौरुषे ॥ **136** ॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु यथेष्ट मनुरागिणः ।
जनाः सन्ततमारेमुनि प्रत्युह समीहिताः ॥ **137** ॥

जिनका वक्षःस्थल श्रीवृक्ष के चिह्न से सहित था, जो चौंसठ लक्षणों से युक्त थे, जो इन्द्र की लक्ष्मी को तिरस्कृत करने वाले थे और जो नित्य एवं अखण्डित पौरुष को धारण करने वाले थे, ऐसे स्वयंभू पुत्र सोलहवें कुलकर भरत महाराज जब भरत क्षेत्र सम्बन्धी छह खण्डों की भूमिका नीतिपूर्वक शासन करते थे तब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में यथेष्ठ अनुराग रखने वाले लोग निर्विघ्न रूप से निरन्तर आनन्द का उपभोग करते थे ।

अवाग्विसर्ग मन्येषा पूर्वधर्मफलं प्रभुः ।
श्रिया स दर्शयन् केषां नाभूद्धर्मस्य देशकः ॥ 138 ॥

जो अपनी लक्ष्मी के द्वारा बिना वचन बोले ही अन्य मनुष्यों के लिए पूर्व जन्म में किए धर्म का फल दिखला रहे थे, ऐसे भरत महाराज किनके लिए धर्म उपदेशक नहीं थे ।

धर्मस्याचरितस्य पूर्व जननेमार्गे जिनानां महान् ।
महात्म्येन सपौरुषः सुखनिधिर्लोकैककल्पद्रुमः ॥
सम्यग्दर्शन रत्नरंजित मनोवृत्तिर्मनश्चक्रभृत् ।
चक्रे शक्रनिभः श्रियाऽत्र भरतः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ 139 ॥

इस प्रकार पूर्व जन्म में आचरण किए हुए धर्म के महात्म्य से जो स्वयं अतिशय महान थे, पौरुष से युक्त थे, सुख के भण्डार थे, लोगों के लिए कल्पवृक्ष स्वरूप थे । सम्दर्शन रूपी रत्न से रंजित मनोवृत्ति सेयुक्त थे और लक्ष्मीयुक्त इन्द्र के समान थे ऐसे चक्रवर्ती भरत सिंह की चेष्टा के समान सुदृढ़ मन को जिनमार्ग में लीन रखने लगे ।

चकार वन्दनां गत्वा चक्री भर्तुनारतम् ।
स त्रिषष्टि पुराणानि शुश्राव च सविस्तरम् ॥ 1 ॥

(हरिवंश पु. सर्ग. 12 पृ. नं. 209)

चक्रवर्ती भरत समवशरण में जाकर निरन्तर भगवान ऋषभदेव को नमस्कार करते थे और त्रेसठ शलाका पुरुषों के पुराण विस्तार के साथ सुनते थे ॥ ९ ॥

वन्दनमाला का प्रारम्भ -

चतुर्विंशति तीर्थेशवन्दनार्थं शिरः स्पृशम् ।
अचीरकरदसौ वेश्मद्वारे वन्दन मालिकम् ॥ 2 ॥

उन्होंने चौबीस तीर्थंकरों की वन्दना के लिए अपने महलों के द्वार पर सिर का स्पर्श करने वाली वन्दनमाला बन्धवाई थीं, जिनका निकलते समय सिर से स्पर्श होता था । घंटियों की आवाज सुनकर भरत को चौबीस तीर्थंकरों का स्मरण हो आता था जिससे वह उन्हें परोक्ष रूप से नमस्कार करता था ।

भरत के 923 पुत्रों की दीक्षा -

अदृष्ट पूर्वतीर्थेशाः प्रविष्टाः समवस्थितम् ।
कदाचिच्चक्रिणा सार्द्धं विवर्द्धन पुनरोगमाः ॥ 3 ॥
क्लिष्टाः स्थावर कायेष्वनादि मिथ्यात्वदूषिताः ।
दृष्ट्वा भगवतो लक्ष्मीं राजपुत्राः सुविस्मिताः ॥ 4 ॥

अन्तर्मुहूर्त कालेन प्रतिपन्नसुसंयमाः ।
त्रयोविंशान्यहो चित्रं शतानि नवभिर्षभुः ॥ 5 ॥

किसी समय चक्रवर्ती के साथ विवर्द्धन कुमार आदि नौ सौ तेईस राजकुमार भगवान के समवशरण में प्रविष्टि हुए । उन्होंने पहले कभी तीर्थंकर के दर्शन नहीं किए थे । वे अनादि मिथ्या दृष्टि थे और अनादि काल से ही स्थावरकायों में जन्म-मरण कर क्लेश को प्राप्त हुए थे । भगवान की लक्ष्मी देखकर वे सब परम आश्चर्य को प्राप्त हुए और अन्तर्मुहूर्त में ही उन्होंने संयम प्राप्त कर लिया ॥ 3-5 ॥

तान प्रशस्य ततश्चक्री शासनं च जिनेशिनाम् ।
नत्वेशं साधुसंघं च विवेश मुदितः पुरीम् ॥ 6 ॥

चक्रवर्ती ने उन सब कुमारों की तथा जिनेन्द्रदेव के शासन की प्रशंसा की और अन्त में वे श्री जिनेन्द्र भगवान तथा मुनि संघ को नमस्कार कर प्रसन्न होते अयोध्या नगरी में प्रविष्ट हुए ॥ 6 ॥

इस युग का प्रथम स्वयंवर -

शनैर्याति ततः काले साम्राज्ये लोकपालिनः ।
चतुवर्गोवितज्ञानजल क्षालितचेतसः ॥ 7 ॥
ततः स्वयंवरारम्भे प्राप्ते भूचरखेचरे ।
वृते मेघेश्वरे धीरे सुसुलोचनया तथा ॥ 8 ॥
युद्धे बद्धेऽर्ककीर्तौ च मुक्ते च कृतपूजने ।
अकम्पन सुताभर्त्ता पूजितश्चक्रवर्तिना ॥ 9 ॥

तदनन्तर धीरे धीरे समय व्यतीत होने पर लोगों की रक्षा करने वाले एवं चतुर्वर्ग के वास्तविक ज्ञानरूपी जल से प्रक्षालित, चित्त के धारक महाराज भरत के साम्राज्य में सर्वप्रथम स्वयम्बर प्रथा का प्रारम्भ हुआ । स्वयम्बर मण्डप में अनेक भूमिगोचरी तथा विद्याधर इकट्ठे हुए । बनारस के राजा अकम्पन की पुत्री सुलोचना ने हस्तिनापुर के राजा सोमप्रभ के पुत्र मेघेश्वर जयकुमार को वरा । अर्ककीर्ति और जयकुमार का युद्ध हुआ । जिसमें जयकुमार ने अर्ककीर्ति को बांध दिया । अकम्पन की प्रेरणा से उसे छोड़ दिया । एवं उनका सत्कार किया और चक्रवर्ती ने सुलोचना के प्रति जयकुमार का सत्कार किया ।

9 दिग्विजयी बने आत्मजयी

अनुभयं चिरं लक्ष्मीं भूपतिर्भरतेश्वरः ।
आदित्ययशसं पुत्रमभिषिच्य भुवो विभुः ॥ 1 ॥

(ह. वं. पु. स. 13 प. 216)

षट्खण्ड पृथ्वी के स्वामी महाराज भरत ने चिरकाल तक लक्ष्मी का उपभोग कर अर्ककीर्ति नामक पुत्र का अभिषेक किया ।

दीक्षां जग्राह जैनेन्द्रीम्रगामात्मपरिग्रहाम् ।
दुर्निगृहेन्द्रियग्राममृगनिग्रहवागुराम् ॥ 2 ॥

स्वयं अतिशय कठिन आत्मरूप परिग्रह से युक्त एवं कठिनाई से निग्रह करने योग्य इन्द्रियरूपी मृग समूह को पकड़ने के लिये जाल के समान जिनदीक्षा धारण कर ली ।

पञ्चमुष्टिमिरूत्पाट्य त्रुटयद्बन्धस्थितिः क्वचान् ।
लोचानन्तरमेवापद् राजन् श्रेणिक ! केवलम् ॥ 3 ॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि, हे राजन श्रेणिक ! महाराज भरत ने अपने समस्त केश पंचमुट्ठियों से उखाड़कर फेंक दिये तथा अनेक कर्मबंधन की स्थिति इतनी जल्दी क्षीण हुई कि उन्होंने केशलोंच के बाद ही केवलज्ञान प्राप्त कर लिया ।

द्वात्रिंशत्त्रिदशेन्दैः स कृतकेवलपूजनः ।
दीपको मोक्षमार्गस्य विजहार चिरं महीम् ॥ 4 ॥

तदनन्तर बत्तीसों इन्द्रों ने आकर जिनके केवलज्ञान की पूजा की थी और जो मोक्षमार्ग को प्रकाशित करने के लिये दीपक के समान थे, ऐसे भगवान भरत ने चिरकाल तक पृथ्वी पर विहार किया ।

भरत की आयु -

पूर्वलक्षाः कुमारत्वे तस्यागुः सप्तसप्ततिः ।
साम्राज्ये षट् प्रभोरेका श्रामण्ये विश्वदृश्वनः ॥ 5 ॥

सर्वदर्शी भगवान भरत की आयु भी चौरासी लाख पूर्व की थी, उसमें से सतत्तर लाख पूर्व तो कुमार काल में ही बीते, छह लाख पूर्व साम्राज्य पद में व्यतीत हुए और एक लाख पूर्व उन्होंने मुनि पद में विहार किया ।

पृथ्वीकान्त बने मुक्तिकान्त -

शैलं वृषभसेनाद्यैः कैलासमाधिरूह्य सः ।
शेष कर्मक्षयान्मोक्षमन्ते प्राप्तः सुरैः स्तुतः ॥ 6 ॥

आयु के अन्त समय में वे वृषभसेन आदि गणधरों के साथ कैलास पर्वत पर आरूढ़ हो गये और शेष कर्मों का क्षयकर वहीं से उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया, देवों ने उनकी स्तुति की ।

राजाओं की वंशावली -

आदित्यराशसः पुत्रो जातः स्मितयशः श्रुतिः ।
श्रियं तस्मै वितीर्यासौ तपसा प्राप निर्वृतिम् ॥ 7 ॥

राजा अर्ककीर्ति के स्मितयश नामक पुत्र हुआ । अर्ककीर्ति उसे लक्ष्मी दे तप के द्वारा मोक्ष को प्राप्त हुआ ।

बलस्तस्मादभूत्पुत्रः सुबलोऽतो महाबलः ।
ततोऽतिबलनामा च तस्यामृतबलः सुतः ॥ 8 ॥
सुभद्रः सागरो भद्रो रवितेजाः शशी ततः ।
प्रभूतेजास्तेजस्वी तपोनोऽन्यः प्रतापवान् ॥ 9 ॥
अतिवीर्यः सुवीर्योऽतस्तथोदितपराक्रमः ।
महेन्द्रविक्रमः सूर्य इन्द्रद्युम्नो महेन्द्रजित् ॥ 10 ॥
वभुर्विभुरविध्वंशो वीतभीर्वृषभध्वजः ।
गरूडाङ्को मृगाङ्काख्य इत्याद्याः पृथिवीभृतः ॥ 11 ॥
आदित्यवंशसम्भूताः क्रमेण पृथुकीर्तयः ।
सुतेन्यस्तभराः प्रापुस्तपसा परिनिर्वृतिम् ॥ 12 ॥

स्मितयश के बल, बल के सुबल, सुबल के महाबल, महाबल के अतिबल, अतिबल के अमृतबल, अमृतबल के सुभद्र, सुभद्र के सागर, सागर के भद्र, भद्र के रवितेज, रवितेज के शशी, शशी के प्रभूततेज, प्रभूततेज के तेजस्वी, तेजस्वी के तपन्, तपन् के प्रतापवान्, प्रतापवान् के अतिवीर्य, अतिवीर्य के सुवीर्य, सुवीर्य के उदितपराक्रम, उदितपराक्रम के महेन्द्रविक्रम, महेन्द्रविक्रम के सूर्य, सूर्य के इन्द्रद्युम्न, इन्द्रद्युम्न के महेन्द्रजीत, महेन्द्रजीत के प्रभु, प्रभु के विभु, विभु के अविध्वंश, अविध्वंश के वीतभी, वीतभी के वृषध्वज, वृषभध्वज के गरूडाङ्क और गरूडाङ्क के आदि अनेक राजा क्रम से सूर्यवंश में उत्पन्न हुए । ये सब राजा विशाल यश के धारक थे और पुत्रों के लिए राज्यभार सौंपकर तपकर मोक्ष को प्राप्त हुए ।

मोक्षमिक्ष्वाकवो जम्भुर्भरताद्या निरन्तराः ।
ते चतुर्दशलक्षास्तु प्रापैकोऽगृहेमिन्द्रताम् ॥ 13 ॥
तथा दशगुणाश्चाष्टौ परिपाट्या नरेश्वराः ।
मुक्तास्तदन्तरे प्रापदेकैकेः सुरनाथताम् ॥ 14 ॥

भरत को आदि लेकर चौदह लाख इक्ष्वाकुवंशीय राजा लगातार मोक्ष गये । उसके बाद एक राजा सर्वार्थसिद्धि से अहमिन्द्र पदको प्राप्त हुआ, फिर अस्सी राजा मोक्ष गए परन्तु उनके बीच में एक-एक राजा इन्द्र पद को प्राप्त होता रहा ।

धीरा राज्यधुरां त्यक्त्वा धृत्वान्तेऽन्ये तपोधुराम् ।
स्वर्गमेकेऽपवर्गं तु जग्मुरादिव्यवंशजाः ॥ 15 ॥

सूर्यवंश में उत्पन्न हुए कितने ही धीर-वीर राजा अन्त में राज्य का भार छोड़कर और तप का भार धारण कर स्वर्ग गये तथा कितने ही मोक्ष को प्राप्त हुए ।

योऽसौ बाहुबली तस्माज्जातः सोमयशाः सुतः ।
सोमवंशस्य कर्तासौ तस्य सूनुर्महाबलः ॥ 16 ॥
ततोऽभूत्सुबलः सूनुरभूद्भुजबली ततः ।
एवमाद्याः शिवं प्राप्ताः सोमवंशोद्भवा नृपाः ॥ 17 ॥

भगवान् वृषभदेव के जो बाहुबलि पुत्र थे उनसे सोमयश नाम का पुत्र हुआ। वही सोमयश सोमवंश (चन्द्रवंश) का कर्ता हुआ । सोमयश का महाबल, महाबल का सुबल और सुबल का भुजबली पुत्र हुआ । इन्हें आदि लेकर सोमवंश में उत्पन्न हुए अनेक राजा मोक्ष को प्राप्त हुए ।

पञ्चाशत्कोटिलक्षाश्च सागराणां प्रमाणतः ।
तीर्थे वृषभनाथस्य तदा वहति सन्तते ॥ 1 ॥
इक्ष्वाकवो द्विधादिव्यसोमवंशोद्भवा नृपाः ।
उग्राद्या कौरवाद्याश्च मोक्षं स्वर्गं च भेजिरे ॥ 19 ॥

इस प्रकार भगवान वृषभदेव का तीर्थ पृथ्वी पर पचास लाख करोड़ सागर तक अनवरत चलता रहा । इस तीर्थकाल मेंअपनी दो शाखाओं सूर्यवंश और चन्द्रवंश में उत्पन्न हुए इक्ष्वाकुवंशीय तथा कुरुवंशीय आदि अनेक राजा स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त हुए ।

विद्याधर राजाओं की वंशावली -

नमेः खेचरनाथस्य रत्नमाली शरीरजः ।
रत्नवज्रोऽभवत्तस्मात्तवो रत्नरथस्तथा ॥ 20 ॥

रत्नचिह्नाभिधानोऽस्मात् तस्माच्चन्द्रस्थः सुतः ।
वज्रजंघो बभूवास्माद् वज्रसेनसुतस्ततः ॥ 21 ॥
सञ्जातो बज्रदंष्टोऽस्मादभूद्वज्रध्वजस्ततः ।
वज्रायुधश्च वज्रोऽतः सुवज्रो वज्रभृत्पुनः ॥ 22 ॥
वज्रभो वज्रबाहुश्च वज्राङ्को वज्रसुन्दरः ।
वज्रास्यो वज्रपाणिश्च वज्राभानुश्च वज्रवान् ॥ 23 ॥
विद्युन्मुखः सुवक्त्रश्च विद्युद्दंष्ट्रस्तथैव च ।
विद्युत्वान् विद्युदाभश्च विद्युद्वेगश्च वैद्युतः ॥ 24 ॥
इत्याद्याः सुतविन्यस्तविभवाः खेचराधिपाः ।
आद्ये तीर्थे तपः कृत्वा स्वर्गं मोक्षं च भेजिरे ॥ 25 ॥

विद्याधरों के स्वामी राजा नाभि के रत्नमाली, रत्नमाली के रत्नवज्र, रत्नवज्र के रत्नरथ, रत्नरथ के रत्नचिह्न, रत्नचिह्न के चन्द्ररथ, चन्द्ररथ के वज्रजंघ, वज्रजंघ के वज्रसेन, वज्रसेन के वज्रदंष्ट्र, वज्रदंष्ट्र के वज्रध्वज , वज्रध्वज के वज्रायुद्ध, वज्रायुद्ध के वज्र, वज्र ते सुवज्र, सुवज्र के वज्रभृत, वज्रभृत के वज्राभ, वज्राभ के वज्रबाहु, वज्रबाहु के वज्राङ्क, वज्राङ्क के वज्रसुन्दर, वज्रसुन्दर के वज्रास्य, वज्रास्य के वज्रप्राणि, वज्रप्राणि के वज्रभानु, वज्रभानु के वज्रवान्, वज्रवान् के विद्युन्मुख, विद्युन्मुख के सुवक्त्र, सुवक्त्र के विद्युद्दंष्ट्र, विद्युद्दंष्ट्र के विद्युत्वान्, विद्युत्वान् के विद्युदाभ, विद्युदाभ के विद्युद्वेग और विद्युद्वेग के विद्युत पुत्र हुआ । इन्हें आदि लेकर जो विद्याधर राजा हुए वे भी भगवान आदिनाथ के तीर्थ में पुत्रों के लिये राज्यवैभव सौंप तपश्चरण कर यथायोग्य स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त हुए ।

वंशोत्पत्ति -

इक्ष्वाकुः प्रथमः प्रधानभुदगादादिव्यवंशस्ततस्तस्मादेव च, सोमवंश इति यस्त्वन्ये कुरुग्रादयः । पश्चाद् श्रीवृषभाद्भूद्दृषिगणः श्रीवंश उच्चैस्तरा- मित्थं ते नृपरवेचरान्त्रययुता वंशास्तवोक्ता मया ॥ 33 ॥

सर्वप्रथम इक्ष्वाकुवंश उत्पन्न हुआ फिर उसी इक्ष्वाकुवंश से सूर्यवंश और चन्द्रवंश उत्पन्न हुये । उसी समय कुरुवंश तथा उग्रवंश आदि अन्य अनेक वंश प्रचलित हुए । पहले भोगभूमि में ऋषि नहीं थे परन्तु आगे चलकर भगवान वृषभदेव से दीक्षा लेकर अनेक ऋषि उत्पन्न हुए और उनका उत्कृष्ट श्रीवंश प्रचलित हुआ ।

10 विभिन्न जैन शास्त्रों में वर्णित भरत

तन्नाम्ना भारतं वर्षमितीहासीज्जनास्पदम् ।
हिमाद्रेरासमुद्राच्च क्षेत्रं चक्र भृतामिदम् ॥ (पुरुदेवचम्पू-6/32)

उसके नाम से (भरत के नाम से) यह देश भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ, ऐसा इतिहास है । हिमवान् कुलाचल से लेकर लवण समुद्र तक का यह क्षेत्र चक्रवर्तियों का क्षेत्र कहलाता है ।

''इहं सुरासुरेन्द्र विंदवंदिय चरणारविंदो उसभो नाम पढमो इत्या जगप्पिया महो आसी । तस्य पुत्तसयं दुवे पहाणा भरहो बाहुबलीय । उसमसिरी पुत्तसयस्स पुरसयं च दाऊण पव्वइयो । तत्थ भरहो भरहवास चूड़ामणि, तस्सेव नामेण इहं भारहतवासं ति पव्वुच्चति ।'' (वसुदेवहिण्डी, प्र. ख. 186 पृ.)

यहाँ जगतपिता ऋषभदेव प्रथम राजा हुए । सुर और असुर दोनों ही के इन्द्र उनके चरण कमलों की वन्दना करते थे । उनके (ऋषभदेव) सौ पुत्र थे । उनमें दो प्रसिद्ध थे- भरत व बाहुबली । ऋषभदेव शतपुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र को राज्य सौंप कर प्रव्रजित हो गये । भारतवर्ष का चूड़ामणि (शिरोमुकुट) भरत हुआ । उसी के नाम से इस देश को भारतवर्ष ऐसा कहते हैं ।

श्री वाग्देव्यै कुप्यति वाग्दैवी द्वेष्टि संततं लक्ष्म्यै ।
भरतमनुगम्य साम्प्रतमनयोरात्यन्तिकं प्रेम ॥ (त्रिज. हेम. 1/2/690)

भरत के चारित्र ने लोगों के हृदयों में अलौकिक भावनाओं को जन्म दिया था । उनके मन में यह धारणा जम गई थी कि भरत के चारित्र को सुनने या सुनाने मात्र से कामनायें स्वत: पूर्ण हो जाती हैं । वे भरत को साधारण जन नहीं मानते थे, अपितु अतिमानव । तदनुरूप शक्ति सम्पन्न वे थे भी । जन-जन का विश्वास किसी सुदृढ़ आधार पर टिका था । भागवत में एक स्थान पर लिखा है -हे राजन् ! भगवद् भक्ति से युक्त, निर्मल गुण, कर्मशील, राजर्षि भरत का चारित्र कल्याणप्रद आयु का संवर्धक, धनभिवर्द्धक, यशप्रदायी तथा स्वर्ग-अपवर्ग का कारण भूत है । इसी ग्रन्थ में एक-दूसरे स्थान पर कथन है --

आर्षभस्येह राजर्षेर्मनसापि महात्मन: ।
नानुवर्त्तमार्हति नृपो मक्षिकेव गरुत्मत: ॥
यो दुस्त्यजान् दारसुतान् सुहृदाज्यंह्रदिस्पृश: ।
जहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकलालस: ॥ (भगवत 5/14/42/43)

हे राजन ! राजर्षि भरत के विषय में पण्डित जन कहते हैं कि -जैसे गरुड़ की बराबरी कोई मक्षिका नहीं कर सकती, उसी प्रकार महात्मा भरत के मार्ग का अनुसरण कोई अन्य राजा मन से भी नहीं कर सकता अर्थात् उन्होंने जिस तरह शासन किया, कोई नहीं अन्य कर सकता । उन उत्तम-श्लोक भरत ने दुस्त्यज स्त्री, पुत्र,मित्र और राज्य की लालसाओं को मलवत् त्याग दिया ।

''पुरुमरमेश्वरपुत्रं भरतेश्वर चक्रवर्तिवदिर्दत--''
द्धरणि निवासिगहुँ व्यंतरामरर् ।
बन्दु काणबुदवनतमकुटर् ॥ (कविचक्रवर्ती पम्प आ. पु. 307)

पुरु परमेश्वर श्री आदि जिनेश्वर के पुत्र चक्रवर्ती व्यन्तरदेव, अमरेन्द्र तथा पृथ्वी तल के समस्त मुकुटबद्ध राजाओं से वंदित थे ।

पुरुपरमेश्वरपुत्रं चरमांगं चक्रवर्तिं यं दोडे पेणल् ।
दोरे पेणरार् भरतनोले ने करदिदुदा गर्वपर्वतं मागधना ॥
(पम्प -आदि पुराण, 318)

पुरु परमेश्वर श्री आदि जिनेश्वर के ज्येष्ठ पुत्र चक्रवर्ती भरत चरम शरीरी थे, जिनके प्रताप के समक्ष भरत खण्ड के सभी राजा-महाराजाओं का गर्व नष्ट होता था।

पुरुपरमेश्वर हिरियकुमारनु । नरलोक कोब्बने राय ।
मरिदु कण्णि णट्टरे क्षण के मुक्यि कांब । भरत चक्रिय हेल्लवने ॥
(भरतेश वैभव, प्र. भा. भोगविजय 20)

पुरु परमेश्वर भगवान आदिनाथ के ज्येष्ठ पुत्र भरत नरलोक के एकमात्र चक्रवर्ती सम्राट थे । क्षणमात्र में दृष्टि बन्द करने से ही उन्हें मोक्ष प्राप्त हो गया था। उसका क्या वर्णन करूँ ।

भरतेश्वरनष्टापद गिरियोल् लेसागि सभेद चैत्यावलियं ।
तरलाक्षिगे वण्णिसुतुं पुरुपरमेश्वरन् चरितेयं केलिसुतुं ॥
(धर्मामृत 10 आश्वास 26)

श्री भरत चक्रवर्ती द्वारा निर्मित अत्यन्त सुन्दर बहत्तर चैत्यालय जैसे - कैलाश पर्वत पर सुशोभित हो रहे हैं, उसी प्रकार उस धन श्री के मन में सम्पूर्ण चैत्यालय प्रतिबिम्बित हो रहे हैं ।

भरतखण्ड के प्राणी जेते । प्रजा भरत राजा की ते ते ।
भरत नरेश ऋषभ की शाखा । तातें लोग पितामह भाखा ॥
(बनारसी विलास, 38)

11 हिन्दूधर्म में वर्णित भरत चरित्र

अजनाभं नामैतद्वर्ष भारतमिति यत आरम्भ व्यपदिशन्ति ॥3 ॥

इस वर्ष को, जिसका नाम पहले अजनाभ वर्ष था, राजा भरत के समय से ही 'भारतवर्ष' कहते हैं ।

स बहुविन्महीपति: पितृपितामहवदुरुवत्सलतया स्वे स्वे कर्मणि वर्तमाना: प्रजा: स्वधर्ममनुवर्तमान: पर्यपातवत् ॥ 4 ॥

महाराज भरत बहुज्ञ थे । वे अपने -अपने कर्मों में लगी हुई प्रजा का अपने बाप-दादों के समान स्वधर्म में स्थित रहते हुए अत्यन्त वात्सल्य भाव से पालन करने लगे ।

संन्यास व्रत ग्रहण -

एवं वर्षायुक्त सहस्रपर्वत पर्यन्तावसित कर्म निर्वाणवसरोऽधिभुज्यमानं स्वतनयेभ्योरिक्थं पितृपैत्रामहं यथादायं विभज्य स्वयं सकल सम्पन्निकेतात्स्वनि केतात् पुलाश्रमं प्रवव्राज ॥ 8 ॥

इस प्रकार एक करोड़ वर्ष निकल जाने पर उन्होंने राज्यभोग का प्रारब्ध क्षीण हुआ जानकर अपनी भोगी हुई वंश परम्परागत सम्पत्ति को यथायोग्य पुत्रों में बाँट दिया फिर अपने सर्वसम्पत्ति सम्पन्न राजमहल से निकलकर वे पुलहाश्रम (हरिहर क्षेत्र) में चले गये ।

तस्मिन् वाव किल स एकल: पुलहा श्रमोपवने विविध कुसुमकिसलयतुल सिकाम्बुभि: कन्दमूलफहोपहारैक्ष समीहमानो भगवत आराधनं विविक्त उपरत विषयाभिलाष उपभृतोपशमपरां विर्वतिमवाप ॥ 11 ॥

उस पुलहाश्रम के उपवन मे एकान्त स्थान में अकेले ही रहकर वे अनेक प्रकार के पत्र, पुष्प, तुलसीदल, जल और कन्द -मूल फलादि उपहारों से भगवान की आराधना करने लगे । इससे उनका अन्त:करण समस्त विषयाभिलाषाओं से निवृत होकर शांत हो गया और उन्हें परम आनन्द प्राप्त हुआ ।

तयेत्थमविरत पुरुषपरिचर्यया भगवति प्रवर्धमानानुरागभरद्रुत हृदयशैथिल्य: प्रहर्षवेगेनात्मत्युद्विद्यमान रोमपुलक-कुलक औत्कण्ठयप्रवृत्तप्रणय वाष्पनि

रुद्धाबलोकनयन एवं निजरमणारुणचरणारबिन्दानुध्यान परिचितभक्तियोगेन परिप्लुतपरमाह्लादगम्भीर हृदय हृदावगाढधिषणस्तामपि क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न सस्मार ॥ 12 ॥

इस प्रकार जब वे नियमपूर्वक भगवान की परिचर्या करने लगे, तब उससे प्रेम का वेग बढ़ता गया, जिससे उनका हृदय द्रवीभूत होकर शांत हो गया, आनन्द के प्रबल वेग से शरीर में रोमाञ्च होने लगा तथा उत्कण्ठा के कारण नेत्रों में प्रेम के आँसू उमड़ आये जिससे उनकी दृष्टि रुक गई । अन्त में जब अपने प्रियतम के अरुण चरणारविन्दों के ध्यान से भक्तियोग का आविर्भाव हुआ, तब परमानन्द से सराबोर हृदय रूप गम्भीर सरोवर में बुद्धि के डूब जाने से उन्हें उस नियमपूर्वक की जाने वाली भगवत्पूजा का भी स्मरण न रहा ।

(श्रीमद्भगवते महापुराणे पारमहंस्यां पञ्चमस्कन्धे सप्तमोऽध्याय नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हिन्दी वराह पुराण अध्याय 73 पृष्ठ 181)

नाभेरूर्मदेव्यां पुत्रमजनयन्नृषभ नामानं तस्य भरतो ।
पुत्रञ्च तावतग्रजः तस्य भरतस्य पिता ऋषभः-
हेमाद्रेर्दक्षिणं वषं महद् भारतं नाम शशाश ॥

(वराह पुराण अध्याय 74 पृ. 49)

अर्थ -नाभि के मरुदेवी के गर्भ से ऋषभ नाम का पुत्र हुआ तथा ऋषभदेव के भरत हुए, वे भरत अपने सब भाइयों में बड़े थे । भरत के पिता ऋषभ ने भरत को हिमाद्रि के दक्षिण का प्रदेश दिया था और भरत के द्वारा वह प्रदेश पालित होने से उसका नाम भारत प्रसिद्ध है ।

नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मरुदेव्यां महाद्युतिः ।
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षेत्रस्य पूर्वजम् ॥ 50 ॥
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः ।
सोभिषिंच्यापि भरतं पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः ॥ 51 ॥
हिमाह्वं दक्षिणं वर्ष भरताय न्यवेदयत् ।
तस्माद् भारतं वर्ष तस्य नाम्ना विर्दुवुधाः ॥ 52 ॥

(वायु महापुराण पर्व अ. 33 पृ. 51)

अर्थ -नाभि के मरुदेवी नाम की भार्या से महान् क्रान्तिधारी राजाओं में श्रेष्ठ

और क्षत्रियों में सबसे पहला ऋषभ नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ।

उन ऋषभदेव से भरत नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि अपने सौ भाइयों में सबसे बड़ा था ।

ऋषभदेव ने भरत को राज्य देकर दीक्षा धारण की । भरत ने हिम नामक दक्षिण प्रदेश को सम्हाला थां इसलिये इस प्रदेश का नाम "भारत" प्रसिद्ध है ।

नाभेर्निसगं वक्ष्यामि हिमांकेऽस्मिन्निबोधत् ।
नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मरुदेव्यां महामतिः ॥ 19 ॥
ऋषभं पार्थिवं श्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूजितम् ।
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रज ॥ 20 ॥
सोऽभिषिंच्याऽपि श्रृषभो भरतं पुत्रवत्सलः ।
ज्ञानवैराग्यमाश्रित्य जितेन्द्रियमहोरगान् ॥ 21 ॥
नग्नो जटी निराहारो चीरीध्वांतगतो हि सः ।
सर्वात्मनात्मनि स्थाप्य परमात्मानमीश्वरम् ॥ 22 ॥
निराशस्त्यक्तसंदेहः शैवमाप परं पदम् ।
हिमाद्रेर्दक्षिणं वर्ष भरताय न्यवेदयत् ॥ 23 ॥
तस्मात्तु भारतं वर्ष तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ।

(लिंगपुराण अध्याय 47 पृ. 68)

अर्थ -अब मैं नाभिराज के खानदान का वर्णन करूँगा-नाभि के मरुदेवी के गर्भ से महान् बुद्धि का धारक, राजाओं में श्रेष्ठ, समस्त क्षत्रियों द्वारा पूज्य ऋषभ नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ । उन ऋषभदेव के सौ पुत्रों में सबसे बड़े का नाम भरत था । ऋषभदेव ने भरत को राज्य सौंप दिया ।

तथा ज्ञान एवं वैराग्य का अवलंबन लेकर इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने लगे। अपनी आत्मा में ही आत्मा के द्वारा परमात्मा की स्थापना करके दिगम्बर भेष में आहार न करते हुये रहने लगे ।

ऐसे समय में उनके केश बढ़ गये थे । और उनके मन से वस्त्र धारण करने का अन्धकार (मोह) समाप्त हो गया था । अतः वे नग्न रहते थे ।

आशाओं से मुक्त सन्देह से रहित उनकी साधना उन्हें मोक्ष जाने में सहायक हुई ।

उन्होंने भरत के लिए हिमाद्रि का दक्षिण प्रदेश शासन करने को सौंपा था अतः

उस देश का नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध है ।

नाभेः पुत्रश्च ऋषभः त्रिषभाद्भरतोऽभवत्,
तस्य नाम्ना त्विदं वर्षं भारतं चेति कीर्त्यते ।
स्कन्धपुराणं माहेश्वर खण्ड़ कौमारखण्ड़ (अं. 37)

अर्थ :- नाभि के पुत्र ऋषभदेव और ऋषभदेव के पुत्र भरत हुए । उन्हीं भरत के नाम से इस देश का नाम भारत प्रसिद्ध है ।

अग्नीध्रसूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूत् सुतो द्विजः।
ऋषभाद् भरतो जज्ञेवीरः पुत्रशताद्वरः ॥ 39 ॥
सोभिषिंच्यर्षभः पुत्रं महाप्राव्राज्यमास्थितः ।
तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रमसंश्रयः ॥ 40 ॥
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताया पिता ददौ।
तस्मात्तु भारतं वर्ष तस्य नाम्ना महात्मनः ॥ 41 ॥

(मार्कण्डेय पुराण अध्याय 50)

राजा प्रियव्रत ने अग्नीन्ध्र को जम्बूद्वीप का राज्य दिया था । उनके सौ पुत्र हुए, जो पिता के समान शक्तिशाली थे । उनमें सबसे बड़े का नाम नाभि था उससे छोटा किंपुरुष था, तीसरे का नाम हरि, चौथे का इलावृत, पाँचवें का रम्य, छठे का हिरण्यक, सातवें का कुरु,आठवें का भद्राश्व और नवें का नाम केतुमाल था । इन पुत्रों के नाम पर जम्बूद्वीप के नौ खण्ड हुए । हिमवर्ष को छोड़कर शेष जो किम्वर्ष आदि वर्ष हैं उनमें सुख की अधिकता है और बिना यत्न किये स्वभाव से ही यहाँ सब कामनाओं की सिद्धि होती है । उनमें किसी प्रकार के विपर्यय (असुख, अकाल, मृत्यु आदि) तथा जरा-मृत्यु का कोई भय नहीं है और न वहाँ, धर्म, अधर्म, कथा अथवा उत्तम, मध्यम, अधम आदि का ही कोई भेद है । उन आठ वर्षों में न चार युगों की व्यवस्था है न छः ऋतुओं की । वहाँ किसी विशेष ऋतु के कोई चिह्न नहीं दिखाई पड़ते । अग्नीन्ध्रकुमार नाभि के पुत्र ऋषभ और ऋषभ के भरत हुए जो अपने भाइयों में सबसे बड़े थे । ऋषभ अपने पुत्र को राज्य दे महाप्रव्रज्या (सन्यास) ग्रहण करके तपस्या करने लगे । उन्होंने हिम नामक वर्ष को, जो सबसे दणिण में है, अपने पुत्र भरत को दिया था इसलिये महात्मा भरत के नाम पर इसका नाम भारतवर्ष हो गया ।

अथ ह भगवानृषभदेवः स्ववर्षं कर्मक्षेत्रमनुमन्यमानः,
प्रदर्शितगुरुकुलवासो लब्धवरैर्गुरुभिरनुज्ञातो गृहमेधिनां ।
धर्माननुशिक्षमाणो जयत्यामिद्रदत्तायामुभयलक्षण -
कर्म समाम्नायाम्नातमभियुञ्जन्नात्मजामात्मसमानां, शतं जनयामास ॥ 8 ॥

येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुणः ।
आसीद् येनेदं वर्षं भारतमिदि व्यपदिशति ॥ 9 ॥

अब भगवान् ऋषभदेव ने अपने खंड को कर्म क्षेत्र मानकर गुरुकुल में वास करके गुरुजी से आज्ञा तथा वर लेकर गृहस्थों के धर्म की शिक्षा करते हुए इन्द्र से प्राप्त जयन्ती नाम की पत्नी से अपने ही समान सौ पुत्रों को उत्पन्न किया और श्रुति-स्मृति के अनुसार दो प्रकार के कर्मों को कहकर वेद की शिक्षा दी ।

उनके पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र भरतजी श्रेष्ठ गुणवाले और परम योगी हुए, जिनके नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ ।

(श्रीमद् भागवत स्कन्ध 5 अध्याय 4)

तस्यामुह वा आत्मजान्कात्स्न्येनानुरूपा --
नात्मनः पंच जनयामास भूतादिरिव भूतसूक्ष्माणि ।
सुमतिं राष्ट्रभृतं सुदर्शनमावरणं धूम्रकेतुमिति,
अजनाभं नामैनद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्यदिशंति ॥ 2-3 ॥

जैसे अहंकार से पंचसूक्ष्म भूत (शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध) उत्पन्न हुए वैसे ही भरतजी से उनके समान सुमति, राष्ट्रभृत, सुदर्शन, अवरण और धूमकेतु ये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए । हे राजन ? पहले इस देश को अजनाभ कहते थे परन्तु भरत राजा होने से इसका नाम ''भारतवर्ष'' हुआ ।

(स्कन्ध 5, अध्याय 4)

(नाभितः) ऋषभो मेरुदेव्यां च ऋषभाद्भरतोऽभवत् ।
ऋषबो दत्त श्रीः पुत्रे शालग्रामे हरिं गतः ॥ 1 ॥
भरताद्भारतं वर्षं भरतात्सुमतिस्त्वभूत् ।
भरतो दत्तलक्ष्मीकः शालग्रामे हरिंगतः ॥ 12 ॥

(आग्नेय पुराण, अध्याय 107)

अर्थः-भगवान ऋषभदेव ने नाभि के घर मरुदेवी नाम की स्त्री से जन्म प्राप्त किया और उन ऋषभ के भरत नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ।

ऋषभ ने पुत्र को राज्यलक्ष्मी का भार सौंप शालिग्राम वन में तपश्चरण किया।

उन्हीं ऋषभदेव के पुत्र भरत से इस देश का नाम ''भारतवर्ष'' प्रसिद्ध है । भरत के सुमति नाम का पुत्र पैदा हुआ और कुल परम्परा के अनुसार भरत ने भी सुमति को राज्य कार्य सौंप शालिग्राम वन में तपश्चरण किया ।

नाभिसवजनयत्पुत्रं मेरुदेव्यां महाद्युतिः ॥ 53 ॥
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः ॥ 60 ॥
सोभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्रव्रज्यया स्थितः।
हिमाह्वं दक्षिणं वर्ष भरताय न्यवेदयत् ॥ 61 ॥
तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ।

(ब्रह्माण्डपुराण पर्व,अ. 14, पृ. 22)

अर्थ :-नाभि की धर्मपत्नी मेरुदेवी का महान् समस्त राजाओं में श्रेष्ठ तथा क्षत्रियों के पूर्वज ऋषभ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । ऋषभ से भरत नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ जो सौ पुत्रों में सबसे बड़ा था ।

ऋषभदेव ने भरत का राज्याभिषेक करके दीक्षा धारण की । भरत को हिम नामक दक्षिण प्रदेश का अधिकार दिया ।

उन्हीं भरत से इस देश का नाम 'भारतवर्ष' पड़ा है ऐसा विद्वान जानते हैं ।

ऋषभाद्भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्रशताग्रजः।
तस्य राज्यं स्वधर्मेण तथेष्ट्वा विविधान् मखान् ॥ 28 ॥
अभिषिंच्य सुतं वीरं भरतं पृथ्वीपतिः ।
तपसे स महाभागः पुलहस्याश्रमं ययौ ॥ 29 ॥
ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते ॥ 32 ॥

अर्थ :-ऋषभ से सौ पुत्रों में सबसे बड़ा भरत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और ऋषभ धर्म-पूर्वक राज्य कार्य करके अनेक प्रकार के यज्ञादिकों को करके भरत को राज्य कार्य में प्रतिष्ठित कर तपश्चरण के लिये पुलह ऋषि के आश्रम शालिग्राम चले

गये । उन ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम से ही इस देश का नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ ।

विष्णुपुराण अंश 2 अ. 1

नोटः - पं. श्रीधर जी कृत संस्कृत टीका में लिखा है कि ततश्च ऋषभादनन्तरं भरतेन पालितत्वात् भारतभेतद्वर्ष गीयते ।

अर्थ :-ऋषभदेव के पश्चात् भरत के द्वारा यह देश पालन किया गया है इसलिये इस देश का नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध है ।

हिमाह्वं य तु यद्वर्ष नामेरासीन्महात्मनः।
तस्यर्ष भोऽभवत्पुत्रो मरुदेव्यां महाद्युतिः ॥ 37 ॥
ऋषभाद्भरतो जज्ञेवीरः पुत्रशताग्रजः ।
सोमिषिंच्यर्षमः पुत्रं भरतं पृथ्वीपतिः ॥ 38 ॥

उस नाभि के मरुदेवी नाम की भार्या से महान् कांति धारक ऋषभ नामक पुत्र हुआ और ऋषभ से, सौ पुत्रों में सबसे बड़ा भरत नामक पुत्र हुआ ।

ऋषभ ने पुत्र भरत को सिंहासन पर अधिष्ठित किया । इन श्लोकों का भी वही अभिप्राय है जो अन्य पुराणों में वर्णित है तथा 'च' इसी अध्याय के श्लोक 23 में लिखा है कि -

स्वनामचिह्नितञ्चात्र तथा वर्षाणि सुब्रतः ॥ 23 ॥

अर्थात् इन सात द्वीपों के नाम से उस समय के सम्राटों के नाम से पड़े हैं ।

अतः सिद्ध है कि यहाँ भी श्री ऋषभदेव जी के पुत्र भरत के नाम से इस देश का नाम भारत वर्ष पड़ा है, इस बात का संकेत है ।

तत्पुत्रस्तु तदा नाभिनाम्ना लोक सुखावहुः ।
तेनाऽपि च तथा राज्यं पितृवत्परिपालितं ॥
तस्य पुत्रास्तदा जाता ऋषभाद्याः मुनीश्वराः ।
तस्य पुत्रशतं ह्यासीद्दषभस्य महात्मनः ॥
सर्वेषां व चैव पुत्राणां ज्येष्ठो भरत एव च ।
नव योगीन्द्रतां प्राप्ताः वीतरागास्तथाऽभवम् ॥
जनकस्य तु विज्ञातं तैर्दत्तं तु महात्मनः ।
एकाशीतिः ततो जातः कर्ममार्ग परायणः ॥
क्षत्रियाणां यथा कर्म कृत्वा मोक्ष परायणाः ।

ऋषभश्वोर्वरिताना हिताय ऋषि सत्तमाः ॥
खंडानि कल्पयामास नवान्यपि हिताय च ।
तत्राऽपि भरते ज्येष्ठं खण्डेऽस्मिन् स्पृहणीयके ॥
तन्नाम्ना चैव विख्यातं खंडं च भारतं तदा ।
सर्वेष्वविचर खंडेषु श्रेष्ठं भरतमुच्यते ॥
अमरा जन्म चेच्छन्ति सर्वत्कर्म सुखावहं ।

(शिवपुराण अध्याय 52, पृष्ठ सं. 85)

-लोक के कल्याणकारी राजा नाभि ने भी अपने राज्य के कार्य भार को पिता की तरह सम्हाला ।

नाभि के ऋषभादि मुनीश्वर पुत्र उत्पन्न हुए और उन ऋषभदेव के सौ पुत्र हुए।

उन सब पुत्रों में बड़े भरत थे 100 पुत्रों में 99 पुत्रों ने दीक्षा धारण कर वीतराग पद प्राप्त किया ।

भगवान ऋषभदेव की कर्म परायण बुद्धि ने शेष 81 पुत्रों को कार्य कुशल बना दिया और वे सब कार्य सम्हालने लगे ।

क्षत्रियोचित कर्त्तव्य का पालन कर अन्त में मोक्ष के पथिक बनें ।

अपने लड़कों के नामों पर ऋषभ भगवान ने संसारी प्राणियों के कल्याण के लिए पृथ्वी के खण्ड बनाये उसमें भरत खण्ड पहले का नाम रखा उसी भरत के नाम से इस खण्ड का नाम "भारत" प्रसिद्ध है ।

आसीत्पुरा मुनिश्रेष्ठः भरतोनाम भूपतिः ।
आर्षभो यस्य नाम्नेदं भारत खण्डमुच्यते ॥ 5 ॥
स राजा प्राप्तराज्यस्तु पितृपैतामहः क्रमात्।
पालयामास धर्मेण पितृवत्प्रजयन् प्रजाः ॥ 6 ॥

(नारद पुराणः पूर्वखण्ड, अध्याय 48)

पूर्व समय मुनियों में भी श्रेष्ठ भरत नाम के राजा थे । वे ऋषभदेव के पुत्र थे और उन्हीं के नाम से यह देश भारत वर्ष कहा जाता है ।

भरत ने परम्परा से पाये हुए राज्य में प्रजा का अत्यधिक हित किया था ।

इस प्रकार वेद, ब्राह्मण, निरुक्त पुराण, महाभारत, भागवत तथा ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि भगवान ऋषभदेव के पुत्र 'भरत' के नाम से ही इस देश का नाम "भारत या भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ ।"

बहुरो रिषभ बड़े जब भये । नाभिराज दे बन को गये ।
रिषभ राज परजा सुख पायो । जस ताको सब जग में छायो ।

रिषभ देव जब बन को गये । नवसुत नवौ खण्ड नृप भये ।
भरत सो भरत खण्ड को राव । करे सदा ही धर्म अरु न्याव ।

-सूरसागर, पंचम् स्कन्ध, पृ. 150 /51

ऐसा तो रिषमाचा पुत्र । जयासी नाव भरत ।
ज्याच्या नामाची कीर्ति विचित्र । परम पवित्र जगामाजी ।
तो भरतु राहिला भूमिकेसी । म्हणोनि भरतवर्ष म्हणती यासी ।
सकल कर्मारम्मी करितां संकल्पासी। ज्याच्या नामासीस्मरतासी ॥

-सार्थ एकनाथी भानवत् 2/44/45

ऋषभदेव के पुत्र भरत ऐसे थे, जिनकी कीर्ति सारे संसार में आश्चर्यजनक रूप से फैली हुई थी । भरत सर्व पूज्य हैं । कार्य आरम्भ करते समय भरत जी का नाम स्मरण किया जाता है । ऐसे भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

॥ इति ॥

संगोष्ठी में आ. रत्न कनकनंदी कृत ग्रन्थों के विमोचन का एक दृश्य ।

चक्रवर्तियों का

	विजय काल	राज्य काल	संयम काल
	60,000 वर्ष	6 लाख पूर्व-61 हजार वर्ष	1,00,000 पू
	30,000 ,,	60 लाख पूर्व - 3 हजार वर्ष	1,00,000 पू
	10,000 ,,	390,000 वर्ष	50,000 वर्ष
	10,000 ,,	90,000 ,,	1,00,000 ,,
	800 ,,	24,200 ,,	25,000 ,,
	600 ,,	23,150 ,,	23,750 ,,
	400 ,,	20,600 ,,	21,000 ,,
	500 ,,	49,500 ,,	0 ,,
	300 ,,	18,700 ,,	10,000 ,,
	150 ,,	8,850 ,,	300 ,,
	100 ,,	1900 ,,	400 ,,
	16 ,,	600 ,,	0

चक्रवर्तियों के स

(1) चक्रवर्ती की रानियाँ = 960
(2) चक्रवर्तियों के गणवद्ध राजा = 320

संक्षिप्त परिचय

	चक्रवर्तियों की पूर्ण आयु 1 पूर्व = 70560000000000 वर्ष	पर्यायान्तर गति	शरीर की ऊँचाई/धनुष = 4 हाथ
	84 लाख पूर्व अर्थात् वर्षों में -592704000000000000000 वर्ष	मोक्ष	500 धनुष अर्थात् 2000 हाथ
	72 ,, ,, ,, -508023000000000000000 ,,	,,	450 ,, ,, 1800 ,,
	5 ,, ,, ,, - 352800000000000000000 ,,	सानत कुमार स्वर्ग	85/2 ,, ,, 170 ,,
	3 ,, ,, ,, - 211680000000000000000 ,,	,,	42 ,, ,, 168 ,,
	1 ,, ,, ,, - 70560000000000000000 ,,	मोक्ष	40 ,, ,, 160 ,,
	95 हजार पूर्व ,, ,, - 67023000000000000000 ,,	,,	35 ,, ,, 140 ,,
	84 ,, ,, ,, - 59270400000000000000 ,,	,,	30 ,, ,, 120 ,,
	60 ,, ,, ,, - 42336000000000000000 ,,	सप्तम नरक	28 ,, ,, 112 ,,
	30 ,, ,, ,, - 21168000000000000000 ,,	मोक्ष	22 ,, ,, 88 ,,
	10 ,, ,, ,, - 7056000000000000000 ,,	,,	20 ,, ,, 80 ,,
	3 ,, ,, ,, - 21168000000000000000 ,,	,,	15 ,, ,, 60 ,,
	700 पूर्व ,, ,, - 4939200000000000000 ,,	सप्तम नरक	7 ,, ,, 28 ,,

क्षिप्त वैभव वर्णन

(18) चक्रवर्तियों के मुकुट वद्धराजा = 32000

(19) ,, ,, नाट्यशाला = 32000

चक्रवर्तियों का संक्षि

चक्रवर्तियों के नाम	कुमार काल	मण्डलीक काल	विजय काल	राज्य काल	संयम काल	चक्रवर्ति
(1) भरत चक्रवर्ती	7700000 पूर्व	1000 पूर्व	60,000 वर्ष	6 लाख पूर्व-61 हजार वर्ष	1,00,000 पूर्व	84 लाख
(2) सगर ,,	50,000 पूर्व	50,000 वर्ष	30,000 ,,	60 लाख पूर्व - 3 हजार वर्ष	1,00,000 पूर्व	72 ,,
(3) मघवा ,,	25,000 पूर्व	25,000 वर्ष	10,000 ,,	390,000 वर्ष	50,000 वर्ष	5 ,,
(4) सनत्कुमार ,,	50,000 वर्ष	50,000 वर्ष	10,000 ,,	90,000 ,,	1,00,000 ,,	3 ,,
(5) शांतिनाथ ,,	25,000 ,,	25,000 ,,	800 ,,	24,200 ,,	25,000 ,,	1 ,,
(6) कुन्थुनाथ ,,	23,750 ,,	23,750 ,,	600 ,,	23,150 ,,	23,750 ,,	95 हजार
(7) अरहनाथ ,,	21,000 ,,	21,000 ,,	400 ,,	20,600 ,,	21,000 ,,	84 ,,
(8) सुभौम ,,	5,000 ,,	5,000 ,,	500 ,,	49,500 ,,	0 ,,	60 ,,
(9) पद्म ,,	500 ,,	500 ,,	300 ,,	18,700 ,,	10,000 ,,	30 ,,
(10) हरिसेन ,,	325 ,,	325 ,,	150 ,,	8,850 ,,	300 ,,	10 ,,
(11) जयसेन ,,	300 ,,	300 ,,	100 ,,	1900 ,,	400 ,,	3 ,,
(12) ब्रह्मदत्त ,,	28 ,,	56 ,,	16 ,,	600 ,,	0	700 पूर्व

चक्रवर्तियों के संक्षिप्त

(1) चक्रवर्ती की रानियाँ	=	96000	(18)
(2) चक्रवर्तियों के गणवद्ध राजा	=	32000	(19)
(3) ,, ,, शरीर रक्षक	=	360	(20)
(4) ,, ,, रसोइयाँ	=	360	(21)
(5) ,, ,, रत्न	=	14	(22)
(6) ,, ,, चामरों को डुलाने वाले यक्ष	=	32	(23)
(7) बन्धु कुल	=		

		,000 ,,	800 ,,	24,200 ,,	25,000 ,,	1 ,,
		23,750 ,,	600 ,,	23,150 ,,	23,750 ,,	95 ,,
	,,	21,000 ,,	400 ,,	20,600 ,,	21,000 ,,	84 ,,
	,00 ,,	5,000 ,,	500 ,,	49,500 ,,	0 ,,	60 ,,
	500 ,,	500 ,,	300 ,,	18,700 ,,	10,000 ,,	30 ,,
	325 ,,	325 ,,	150 ,,	8,850 ,,	300 ,,	10 ,,
	300 ,,	300 ,,	100 ,,	1900 ,,	400 ,,	3 ,,
,,	28 ,,	56 ,,	16 ,,	600 ,,	0	700 ,,

चक्रवर्तियों के संक्षिप्त

(1) चक्रवर्ती की रानियाँ	=	96000	(18)	,,
(2) चक्रवर्तियों के गणवद्ध राजा	=	32000	(19)	,,
(3) ,, ,, शरीर रक्षक	=	360	(20)	,,
(4) ,, ,, रसोइयाँ	=	360	(21)	,,
(5) ,, ,, रत्न	=	14	(22)	,,
(6) ,, ,, चामरों को डुलाने वाले यक्ष	=	32	(23)	,,
(7) ,, ,, बन्धु कुल	=	35000000	(24)	,,
(8) ,, ,, धवल व उत्तम शंख	=	24	(25)	,,
(9) ,, ,, हल	=	100000000000000	(26)	,,
(10) ,, ,, खण्डरूप पृथ्वी	=	6	(27)	,,
(11) ,, ,, गायें	=	30000000	(28)	,,
(12) ,, ,, थालियाँ	=	10000000	(29)	,,
(13) ,, ,, भद्र हाथी	=	8400000	(30)	,,
(14) ,, ,, रथ	=	8400000	(31)	,,
(15) ,, ,, घोड़े	=	180000000	(32)	,,
(16) ,, ,, उत्तम वीर	=	840000000	(33)	,,
(17) ,, ,, म्लेच्छ राजा	=	88000		

चक्रवर्तियों की नव-निधियों का परिचय

क्र. सं.	नाम	उत्पत्ति स्थान	प्रकारान्त से उत्पत्ति स्थान	क्या प्रदान करती हैं ?
1	काल	श्रीपुर	नदीमुख	ऋतु के अनुसार द्रव्य (फल, पुष्प आदि) ।
2	महाकाल	,,	,,	भाजन (बर्तन एवं धातुएँ) ।
3	पाण्डु	,,	,,	धान्य (अनाज एवं षट्रस) ।
4	मानव	,,	,,	आयुध (अनेक शस्त्र) ।
5	शङ्ख	,,	,,	वादित्र (बाजे) ।
6	पद्म	,,	,,	वस्त्र (कपड़े) ।
7	नैसर्प	,,	,,	हर्म्य (महल एवं प्रासाद आदि) ।
8	पिङ्गिल	,,	,,	आभरण (गहने) ।
9	नानारत्न	,,	,,	रत्न समूह (अनेक प्रकार के रत्न) ।

चक्रवर्तियों के चौदह रत्नों का परिचय

क्र.सं.	नाम	क्या हैं	संज्ञा गाथा 1389 एवं 1393	जीव या अजीव	उत्पत्ति स्थान	कार्य
1	अश्व	घोड़ा	पवनञ्जय	जीव	विजयार्धपर	गुफा द्वार खुल जाने पर, तुरंग रत्न द्वारा बारह यो. क्षेत्र को लांघना ।
2	गज	हाथी	विजयगिरि	,,	,,	सवारी करना ।
3	गृहपति	भण्डारी	भद्रमुख	,,	स्व नगर में	भण्डार आदि की सम्हाल करना ।
4	स्थपति	बढ़ई	कामवृष्टि	,,	,,	उन्मग्ना-निमग्ना नदियों पर पुल बनाना ।

3	पाण्डु	,,	,,	धान्य (अनाज एवं षट्रस) ।
4	मानव	,,	,,	आयुध (अनेक शस्त्र) ।
5	शङ्ख	,,	,,	वादित्र (बाजे) ।
6	पद्म	,,	,,	वस्त्र (कपड़े) ।
7	नैसर्प	,,	,,	हर्म्य (महल एवं प्रासाद आदि) ।
8	पिङ्गिल	,,	,,	आभरण (गहने) ।
9	नानारत्न	,,	,,	रत्न समूह (अनेक प्रकार के रत्न) ।

चक्रवर्तियों के चौदह रत्नों का परिचय

क्र.सं.	नाम	क्या हैं	संज्ञा गाथा 1389 एवं 1393	जीव या अजीव	उत्पत्ति स्थान	कार्य
1	अश्व	घोड़ा	पवनञ्जय	जीव	विजयार्धपर	गुफा द्वार खुल जाने पर, तुरंग रत्न द्वारा बारह मो. क्षेत्र को लांघना ।
2	गज	हाथी	विजयगिरि	,,	,,	सवारी करना ।
3	गृहपति	भण्डारी	भद्रमुख	,,	स्व नगर में	भण्डार आदि की सम्हाल करना ।
4	स्थपति	बढ़ई	कामवृष्टि	,,	,,	उन्मग्ना-निमग्ना नदियों पर पुल बनाना ।
5	सेनापति	सेनाध्यक्ष	अयोध्य	,,	,,	गुफाओं के द्वार खोलना एवं सेना संचालन ।
6	पुरोहित	धर्मप्रेरक	बुद्धिसमुद्र	,,	,,	धार्मिक अनुष्ठान करना ।
7	युवती	पटरानी	सुमद्रा	,,	विजयार्धपर	उपभोग का साधन ।
8	चक्र	आयुध	सुदर्शन	अजीव	आयुधशाला	छः खण्ड विजय का प्रेरक साधन ।
9	छत्र	छतरी	सूर्यप्रभ	,,	,,	वर्षा से कटक की रक्षा करना ।
10	असि	आयुध	भूतमुख	,,	,,	शत्रु संहार ।
11	दण्ड	अस्त्र	प्रचण्डवेग	,,	,,	गुफाओं के कपाट खोलना एवं बृषभाचल पर प्रशस्ति लिखना ।
12	काकिरी	,,	चिन्ताजननी	,,	श्रीगृह	दोनों गुफाओं में प्रकाश करना ।
13	चिन्तामणि	रत्न	चूडामणि	,,	,,	मनोवाञ्छित कार्य सिद्धि करना ।
14	चर्मरत्न	ताम्बू	मञ्जमय	,,	,,	गंगादि नदियों के जल से कटक की रक्षा करना ।

चक्रवर्तियों का परिचय

उत्सेध ा 304	आयु गाथा 1306-1307	कुमार काल गाथा 1308-1310	मण्डलीक काल गाथा 1311-1313	दिग्विजय काल गाथा 1379-80	राज्य काल गाथा 1413-1418	संयम काल गाथा 1419-1421	पर्यायान्तर गति गाथा 1422
घ.	8400000 पूर्व	7700000 पूर्व	1000 वर्ष	60000 वर्ष	600000 पूर्व 61000 वर्ष	100000 पूर्व	मोक्ष
,,	7200000 पूर्व	50000 पूर्व	50000 पूर्व	30000 ,,	7000000 पूर्व 3000 वर्ष	100000 पूर्व	मोक्ष
,,	500000 वर्ष	25000 वर्ष	25000 वर्ष	10000 ,,	390000 वर्ष	50000 वर्ष	सानत्कुमार स्वर्ग
,,	300000 ,,	50000 ,,	50000 ,,	10000 ,,	90000 ,,	100000 ,,	सानत्कुमार स्वर्ग
,,	100000 ,,	25000 ,,	25000 ,,	800 ,,	24200 ,,	25000 ,,	मोक्ष
,,	95000 ,,	23750 ,,	23750 ,,	600 ,,	23150 ,,	23750 ,,	मोक्ष
,,	84000 ,,	21000 ,,	21000 ,,	500 ,,	20600 ,,	21000 ,,	मोक्ष
,,	60000 ,,	5000 ,,	5000 ,,	400 ,,	49500 ,,	0 ,,	सप्तम नरक
,,	30000 ,,	500 ,,	500 ,,	300 ,,	18700 ,,	10000 ,,	मोक्ष
,,	10000 ,,	325 ,,	325 ,,	150 ,,	8850 ,,	350 ,,	मोक्ष
,,	3000 ,,	300 ,,	300 ,,	100 ,,	1900 ,,	400 ,,	मोक्ष
,,	700 ,,	28 ,,	56 ,,	16 ,,	600 ,,	0 ,,	सप्तम नरक

चक्रवर्तियों का परिचय

क्रमांक	चक्रवर्तियों के नाम गाथा 1292-93	शरीर का उत्सेध गाथा 1303-1304	आयु गाथा 1306-1307	कुमार काल गाथा 1308-1310	मण्डलीक काल गाथा 1311-1313	दिग्विजय काल गाथा 1379-80	राज्य काल गाथा 1413-1418	संय 141
1	भरत	500 घ.	8400000 पूर्व	7700000 पूर्व	1000 वर्ष	60000 वर्ष	600000 पूर्व	100
2	सगर	450 ,,	7200000 पूर्व	50000 पूर्व	50000 पूर्व	30000 ,,	61000 वर्ष 7000000 पूर्व	100
3	मधवा	42-1/२ ,,	500000 वर्ष	25000 वर्ष	25000 वर्ष	10000 ,,	3000 वर्ष 390000 वर्ष	50
4	सनत्कुमार	42 ,,	300000 ,,	50000 ,,	50000 ,,	10000 ,,	90000 ,,	100
5	शान्ति	40 ,,	100000 ,,	25000 ,,	25000 ,,	800 ,,	24200 ,,	25
6	कुन्थु	35 ,,	95000 ,,	23750 ,,	23750 ,,	600 ,,	23150 ,,	23
7	अर	30 ,,	84000 ,,	21000 ,,	21000 ,,	500 ,,	20600 ,,	21
8	सुभौम	28 ,,	60000 ,,	5000 ,,	5000 ,,	400 ,,	49500 ,,	
9	पद्म	22 ,,	30000 ,,	500 ,,	500 ,,	300 ,,	18700 ,,	100
10	हरिषेण	20 ,,	10000 ,,	325 ,,	325 ,,	150 ,,	8850 ,,	3
11	जयसेन	15 ,,	3000 ,,	300 ,,	300 ,,	100 ,,	1900 ,,	4
12	ब्रह्मदत्त	7 ,,	700 ,,	28 ,,	56 ,,	16 ,,	600 ,,